सहजानंद शास्त्रमाला

मंगलतंत्र प्रवचन

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

मंगलतंत्र प्रवचन

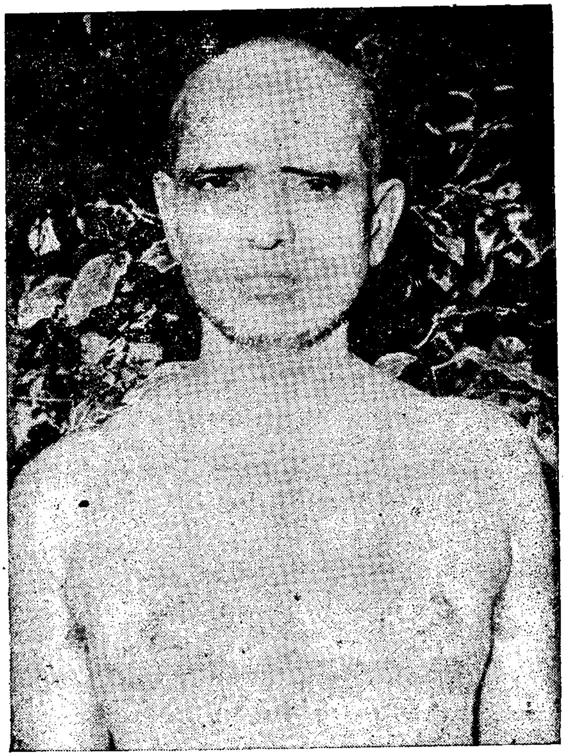

प्रवक्ता:—

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्त-न्याय-साहित्यशास्त्री

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

'श्रीमत्सहजानन्द' महाराज

प्रकाशक:—

खेमचन्द जैन सर्राफ,

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण १०००
सन् १९७८

लागत बिना जिल्द २)५० रु०
जिल्द का पृथक् ५० पै०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॐ··· ॥ टेक ॥

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ १ ॥ ॐ····

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥ २ ॥ ॐ····

परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्म का दर्शन, चहुं गति दुखहारी ॥ ३ ॥ ॐ···

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥ ४ ॥ ॐ····

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥ ५ ॥ ॐ···

नोट—यह आरती निम्नांकित अवसरोंपर पढ़ी जाती है—

१– मन्दिर आदिमें आरती करनेके समय ।
२– पूजा, विधान, जाप, पाठ, उद्घाटन आदि मंगल कार्योंमें ।
३– किसी भी समय भक्ति-उमंगमें टेकका व किसी छंदका पाठ ।
४– सभाओंमें बोलकर या बुलवाकर मंगलाचरण करना ।
५– यात्रा वंदनामें प्रभुस्मरणसहित पाठ करते जाना ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

∘∘∘○◯○∘∘∘

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मंगलतंत्र प्रवचन

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

(१) **शुद्ध तत्त्वका अभिवन्दन**—शुद्धके लिए नमस्कार हो । शुद्ध दो तरहसे देखा जाता है—(१) एक तो निर्दोष हो जाय, दोष दूर हो जाय, पर्याय शुद्ध बन जाय, प्रभुता आ जाय, अरहंत और सिद्धकी अवस्था हो उसे शुद्ध कहते हैं । यह तो हुआ पर्यायशुद्ध । आत्माका जो सहज स्वरूप है आत्मा सत् है ना, तो सत्त्वके ही कारण आत्मामें जो कुछ स्वरूप होता है वह शुद्ध कहलाता है । कोई भी पदार्थ जो भी पदार्थ है उसका अपना निज का स्वरूप आकार अवश्य है । स्वभाव बिना वस्तु नहीं, वस्तु बिना स्वभाव नहीं । जो भी है उसका स्वभाव अवश्य है ? तो आत्माका स्वभाव क्या है ? प्रतिभास, ज्ञानप्रकाश, चैतन्यमात्र । उज्ज्वल है यह आत्मद्रव्य । जिसकी निजी विशेषता है कि वह ऐसा प्रतिभास स्वरूप है कि जगतमें जो हो सब उसके प्रकाशमें रहेगा । स्वभाव उसका ऐसा है । तो जो सहज ज्ञानस्वभाव है उसे भी शुद्ध बोलते हैं । जैसे दूध शुद्ध है तो उस शुद्धके दो अर्थ लिये जा सकते हैं—एक तो व्रतियोंको दिलाने लायक शुद्ध, मर्यादाके अन्दर गर्म किया हुआ हो, बिना जूता पहिने दुहा गया हो, जिसमें कोई अशुद्ध पानी वगैरह न मिलाया गया हो । इस तरह शुद्ध दूध जो पवित्रतासे लाया गया हो उसे शुद्ध दूध कहते हैं । यह तो एक व्यवहार नयसे व्रतियोंको देने लायक एक शुद्ध दूधकी पहिचान है । उसमें अगर कोई अठपहरा थोड़ा पानी भी मिला दे तो भी वह शुद्ध कहलाता है । पर एक शुद्ध होता है द्रव्य शुद्ध याने दूध में कुछ भी मिलाया न हो और दूधमेंसे कुछ निकाला न हो, ऐसे दूधको कहते हैं शुद्ध दूध । पवित्रतासे भी लाया हुआ दूध हो और उसमें शुद्ध पानी मिलाया हो तो भी वह दूध शुद्ध नहीं कहा जा सकता । यहाँ वस्तु शुद्धिकी बात कह रहे हैं । तो दुहकर लाये हुए दूधमें पानी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न मिलाये और उस दूधमें से कुछ निकाले भी नहीं तो वह शुद्ध दूध कहलाता है। यहाँ वस्तुकी अपेक्षा शुद्ध कह रहे हैं। दूधमें पानी मिलाया तो अशुद्ध, और दूधमें से क्रीम निकाल लो तो वह सपरेटा दूध हुआ, वह भी अशुद्ध हुआ। दूध दूध ही हो, दूधमें दूसरा कुछ न मिला हो और दूधमें से निजका कुछ न निकाला हो उसे कहते हैं शुद्ध। इसी निगाह से आत्माकी शुद्धि देखो। जब हमें आत्माको इस तरह जान रहे हैं कि इस आत्मामें कोई दूसरी चीज नहीं मिलायी। जैसे कोई कहने लगे कि आत्मामें कर्मबन्धन है, आत्मामें देह लगा है। आत्मामें क्रोधादिक हैं। यह मिलावट ही है ना। भले ही इस समय जीवमें कर्म लगे हैं, जीव देहमें बँधा है, क्रोधादि करता है। मगर जीवकी सत्तासे तो यह बात नहीं है। सहजस्वरूपसे तो नहीं है। इस समय हम निश्चयदृष्टिसे तक रहे हैं और उसमें भी शुद्ध नय से परम शुद्ध निश्चयनयसे। आत्मामें परका कुछ मिलावट नहीं होता और आत्मामें से कुछ निकाला नहीं जा रहा। जैसे कहते हैं ना कि आत्मामें ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, चारित्रगुण है, आनन्द गुण है, तो ये जैसे मानो आत्मामें से निकलकर आत्मामें फिट कर रहे हैं। ऐसी निकाल जहाँ न हो ऐसा आत्मस्वभावको निरखो। उस निरखमें जो अवक्तव्य आत्म-तत्त्व आया वह है शुद्ध आत्मतत्त्व। ऐसे इस आत्माको नमस्कार हो। नमस्कारका अर्थ है झुकना। ऐसे शुद्धतत्त्वकी ओर मेरा झुकाव हो।

(२) **दृष्टियोंका सदुपयोग आत्मस्वभावदर्शनमें**—जब पर्यायदृष्टिसे शुद्ध तत्त्वको देखा तो वहाँ भी हम शुद्ध अंतस्तत्त्वको निरखें तब व्यवहारदृष्टिके देखनेका फल पाया समझिये। जब शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे निरखते हैं तो बीचकी सब बातोंको छोड़कर निरखते हैं। यह सब बात ज्ञानमें सम्भव है। जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला एक्सरा-यंत्र हो, उसपर कोई खड़ा हुआ है तो एक्सरा यंत्रसे फोटो ली जाती है तो किसकी फोटो आती है? ....हड्डीकी। और यंत्रके सामने तो पहले तो रोम आये, फिर चमड़ी है, फिर खून है, फिर मांस है, फिर भीतर हड्डी है। तो उस यंत्रने इन सबकी फोटो लेना तो छोड़ दिया और सिर्फ हड्डीका ही फोटो लिया, तो जब इन बेजान यंत्रोंमें भी ऐसी तारीफ पायी जाती है कि जिसकी बात करना है उसकी करते हैं बाकी सबको छोड़ देते हैं, तब फिर इस पवित्र ज्ञानमें क्या यह कला न होगी कि यह ज्ञान जिसको जानना चाहे उसको जाने? और बीचकी कुछ भी चीजें आयें उनको न जाने। जब गरम किये हुए पानीको स्वभाव दृष्टिसे देखते हैं तो इस ज्ञानमें गर्मपना नहीं आता। ठंडा-पन आता है। उस ज्ञानमें ऐसी तारीफ है।

(३) **स्वभावदर्शन कलाकी निरुपद्रवता**—अहा इस आत्मस्वभावदर्शनकी कलाका जो उपयोग कर ले उसे विपत्ति आती नहीं। जैसे एक बड़ी नदीमें कोई कछुवा है, वह पानीके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्दर रहता है। उसने सोचा कि मैं पानीके अन्दर चलता रहूं और अपनी चोंच पानीसे बाहर निकाल कर घूमूं। घूमने लगा। अब पूर्व दिशासे २–४ पक्षी आते हैं तो कछुवाने पश्चिमकी ओर अपनी चोंच कर ली। पश्चिमसे कोई पक्षी आये तो फिर उस कछुवेने पूर्वकी ओर अपनी चोंच करली। बहुतसे पक्षी चारों ओरसे आ आकर उस कछुवेकी चोंच चोंटने लगे। वह बेचारा कछुवा परेशान हो गया। अरे वह कछुवा अपनी मूर्खतासे परेशानीमें है। उसे कोई समझाने वाला हो—अरे कछुवे तू क्यों परेशान होता है। तेरेमें तो एक कला है कि जिसका उपयोग करे तो ये २०-५० ही क्या, लाखों पक्षी भी तेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते। क्या है वह कला ?····अरे एक बिलस्त पानीके अन्दर तू अपनी चोंचको अपनेको डुबा ले तो फिर ये लाखों पक्षी तेरा क्या कर सकेंगे ? ऐसे ही यह आत्मा अपने ज्ञान सरोवरसे बाहर उपयोगकी चोंच निकालकर बाहर डोल रहा है। इन्द्रियके विषयोंमें, धन वैभवमें उपयोग डाले जा रहा है। फल यह होता है कि चारो ओरसे कहींसे कुटुम्ब, कहींसे चोर, डाकू आदिक, कहींसे राजा, यों अनेक लोग इसे सताते हैं तो यह अपने उपयोगकी चोंच बदलता रहता है। मां सताये तो बापके पास चले गए, बापने सताया तो मां के पास चले गए, मित्रने सताया तो किसी दूसरे के पास चले गए, इंसपेक्टरने सताया तो वकीलके पास चले गए। यों उपयोग बदलता रहता है। इस तरहसे यह दुःखी होता। ये आचार्यजन, संतजन समझाते हैं कि हे आत्मन् ! तू अपनी मूर्खतासे दुःखी हो रहा है। तेरेमें तो एक कला ऐसी है कि जिसका उपयोग करे तो १०-२० की तो बात क्या, हजारों लाखों आदमी भी सताये तो भी तेरेको वे बाधा नहीं पहुचा सकते। तेरेमें वह कला क्या है कि तू अपने ज्ञानसागरमें उपयोगकी चोंचको डुबा लें, फिर तेरे पर कोई विपत्ति नहीं। यह विपत्ति तब तक है जब तक कि हम बाहरमें कुछ देखते हैं, निरखते हैं, चाहते हैं, लगाव रखते हैं।

(४) **अन्तस्तत्त्वकी अनुभूतिकी महत्ता**—प्रसंग यह चल रहा था कि अपना जो शुद्ध स्वभाव है केवल आत्मसत्त्वके कारण अपने आपमें अनादि अनन्त अहेतुक अन्तः प्रकाशमान जो एक सहज शुद्ध स्वभाव है उस स्वभावरूप अपनेको स्वीकार कर लेना यह कहलाता है शुद्ध तत्त्वका आश्रय करना। इसी शुद्ध तत्त्वको निरखा था प्रभुने और उसके फलमें अपने आपका अनुभव किया, बस यह ही शुद्ध चैतन्य मैं हूं। सहानुभूति, किसी दूसरेको दुःखी देखकर सहानुभूति आती है और सुख देखकर भी सहानुभूति आती है। और प्रभुका शुद्ध स्वरूप देखे वहां भी सहानुभूति आती है। किसी दूसरे जीवमें जो कुछ हम देखते हैं झट हम अपने आपमें भी उस प्रकारका प्रभाव लाते हैं। लोग कहते हैं कि देखो मेरी माताने गरीबपर दया की। बेचारा भूखा था, हमारी माता बड़ी दयालु है, देखो इस बेचारेको हमारी माताने भर-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पेट भोजन करा दिया। अरे माताने उस गरीबपर दया की या अपने आपपर दया की ? हुआ क्या कि उस भूखेकी पीड़ाका अंदाज करके माताका दिल खुद दुःखी हो गया। उसने अपना दुःख दूर करनेके लिए उस गरीबको भोजन कराया। उस भूखेपर उस माताने कोई दया नहीं की। कैसा ही धर्म करे कोई, सहानुभूति तो खुदकी खुदमें हुई। प्रभुका शुद्ध स्वरूप देखा। उस स्वरूपको देखकर प्रभुके स्वरूपमें ध्यान लगाया, मग्न हो गए तो लोग क्या कहते हैं कि यह बहुत ऊँचे भगत हैं। ये प्रभुमें ही मग्न रहते हैं। अरे प्रभुमें कोई मग्न रह सकता है प्रभु तो दूर हैं। सिद्ध लोकमें हैं या समवशरणमें है, बाहर हैं। उनके स्वरूपका ध्यान करके जो उनके स्वरूप जैसा अपना स्वरूप तकनेमें आये बस उसमें मग्न हो गया। तो परमार्थतः वह अपनेमें मग्न रहा तो प्रभुस्वरूपको देखकर अपनेमें यह बुद्धि लायें कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं। बड़ा उद्देश्य, बड़ा काम और अपना बड़प्पन, महत्त्व इसीमें है कि प्रभुकी प्रभुता जानकर, अपने आपकी प्रभुता निरखकर दीनता छोड़ें और सहज आनन्दस्वरूपमें मग्न होनेका यत्न करें। ऐसा काम करनेमें कष्ट भी बहुत आयेंगे। और असलमें कष्ट एक भी नहीं आता।

(५) **कष्टकी विवेकमें अनवगणना**—भैया ! कष्ट तो माननेका है। जैसे किसीका आज एक हजार रुपया घट गया तो वह बड़ा कष्ट मानता है। उस मोहीसे यह तो पूछो कि वह कष्ट कहाँ है तेरे आत्मामें ? हजार जानेकी जगह मान लो। घरमें ही आग लग गई होती तो उससे तो अच्छे हो ना अब ? ऐसा जब कोई समझाता है तो उसे कुछ समझमें आता है,…अरे कुछ कष्ट नहीं है। तो कष्ट क्या है ? किसी पदार्थसे कष्ट नहीं आता। हम भीतरमें कल्पनायें बनाते हैं और कष्टका अनुभव करते हैं। बाहरमें कोई कष्ट नहीं है। कोई लखपति होकर भी संतोष नहीं कर रहा और अनेक कष्ट मान रहा। अभी मेरा यह काम अधूरा पड़ा, अभी इसके बिना क्या जिन्दगी ? अभी तो यह काम हुआ ही नहीं,…और एक कोई १००-५० रुपयेकी पूंजी वाला खानेके सामानका खोमचा फेरने वाला अपने सिरपर खोमचा रखकर यत्र-तत्र खोमचा लगाता फिरता है, वह हर जगह खुश रहता है, गाना भी गाता है। तो बाहरसे कोई सुख दुःखका हिसाब है क्या ? सब अपने ज्ञानके अनुसार है। अपने ज्ञानको विशुद्ध बनावें। शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निरखनेका पौरुष करें। यह ही विवेककी बात है इस जीवनमें। और जो कुछ समागम पाया है वह साराका सारा न्योछावर समर्पण उत्सर्ग, बलिदान, होम, परित्याग, सब कुछ करना पड़े और इस सहज स्वरूपका दर्शन मिलता है, तो यों समझो कि हमने कुछ भी नहीं खर्च किया, न कष्ट उठाया, सहज मिल गया। बाहरी पदार्थ आखिर मिटने ही हैं। कब तक जियेंगे, कब तक रहेगा समागम ? ज्यों ज्यों समय गुजर रहा है त्यों त्यों मरणके निकट पहुंच रहे हैं और जो वियोग होना है उस कालके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्मुख आ रहे हैं। उसकी चिन्ता छोड़ें। वर्तमान परिणामके सुधारमें आवो। भाव सुधारा तो सब सुधारा, भाव बिगाड़ा तो सब बिगाड़ा। यह भव भी, परभव भी। दुनियामें दिखने वाले स्वच्छन्द पुरुषोंकी होड़ मत करो। होते हैं कुछ लोग कि जिनके पूर्वकृत पुण्यका उदय है, यहाँ बड़े मौजके समागममें हैं, और मनमाना पापकार्य करते हैं। संसार विचित्रतामय है, हमें उनकी होड़ नहीं करना है। अपन तो अपना प्रोग्राम बनावें कि हमें संसारमे नहीं रहना है। मुक्त होना है, यह मनमें ज्ञानमें एक निर्णय बना लें। एक ही काम है मेरा। संसारमें नहीं रहना है, मुक्त होना है। एक ध्येय बन जाय तो सब बात आसान हो जाती है। न किसीका विसम्वाद रहेगा, न किसीको अटक रहेगी। स्वभावदर्शन और स्वभावमग्नता रहे। ऐसा मैं शुद्ध चेतन हूं।

(६) **शुद्ध चिदानुभूतिमें परमार्थ** आत्मसेवा—ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि। शुद्धके लिए नमस्कार हो। और यह मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं। देखो संसारमें कोई किसीका शरण नहीं। कोई सोचे कि यह मेरा पुत्र है, यह बड़ा होगा, सुख देगा, आराम देगा। तो क्या आपको यह पूरा निर्णय है कि यह बड़ा होकर सुख ही देगा? अरे कहो ऐसा हो जाय कि आपको कहीं यह कहना पड़े कि इससे तो यह न होता तो अच्छा था। क्या है कुछ निर्णय आज? ऐसे ऐसे लोग भी देखनेमें आते हैं कि लड़का माँ को सताता, स्त्रीका पक्ष लेता, माँ को अलग कर देता, कुछ परवाह नहीं करता, गालियाँ भी देता। और मानो कमा कर खिलाये पिलाये भी तो भी उसने अपने मात्र विनय व्यवहारसे दिया सो बात नहीं। आपकी सज्जनता भी है। आपका कुछ प्रभाव भी है, आपने कुछ मकान वगैरह अपने नाम भी कर रखा होगा। ऐसी अनेक बातें हैं सो वह पूछता है। प्रथम बात तो यह है कि पुण्य आपने कमाया उसका उदय है, उससे पूछता है। कोई किसीका शरण नहीं है। अपना शरण है तो अपना निर्मल परिणाम शरण है। परिणामकी मलिनता न हो तो कोई बाधा नहीं है। हम कुमार्गपर चलें तो हम अपने आप अपनेको बरबाद कर लेते हैं। प्रभुभक्ति और अपने आपके स्वरूपका ध्यान ये दो बातें ही हम आपको शरण हैं। इसी को मंगल, लोकोत्तम, शरणभूत कहा गया है। इस ओर ध्यान देना है, इस ओर अपने आपका उपयोग बनाना है। मैं सबसे निराला हूं, देहसे भी भिन्न केवल ज्ञानप्रकाश मात्र हूं। ज्ञान सिवाय और मैं कुछ नहीं हूं। जहाँ सबसे निराले ज्ञानज्योतिके दर्शन कर लिया वहाँ सर्व ऋद्धि सिद्धि प्राप्त है। जहाँ इच्छा नहीं तहाँ सर्वसिद्धि है और जहां इच्छा है वहाँ सारी विपत्ति है। तो कुछ क्षण अपनी दयामें भी बिताना चाहिये। नौकरी तो सबकी करना ही पड़ता है। पुत्रके पुण्यका उदय है तो पुत्रकी नौकरी करनी पड़ती है। जिन जिनके पुण्यका उदय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है उनकी सेवा करनी पड़ती है। करें सेवा, गृहस्थी है, मगर रात दिनके चौबीसों घंटोंमें कोई समय ऐसा भी रखें जहां मात्र अपनी सेवा करें। अपने को ज्ञानस्वरूपमें निरखें, यह ही अपनी वास्तविक सेवा है।

(७) शरण्यका अन्वेषण—हम आप वर्तमानमें अशुद्ध अवस्थामें गुजर रहे हैं। और इसी कारण दुःखी रहते हैं। जो ठौर है, धाम है सुखी होनेका उस जगह फिट नहीं हो पाते। तो आवश्यकता है कि हमारी अशुद्ध परिणति मिटे और शुद्ध परिणति बने। इस सम्बंधमें विचारणीय विषय यह है कि हमारी शुद्ध परिणति कैसे बनेगी? किसका सहारा लेनेसे बनेगी। इस जीवमें पुरातन आदत है कि किसी न किसीका हमेशा सहारा लिए रहते हैं। कहीं सहज सहारा है तो कहीं जान बूझकर सहारा हो पाता है या नहीं यह अन्य बात है मगर प्रकृति है ऐसी कि वह सहारा लिए रहे। यहां विचार करो किसका सहारा लें तो शुद्ध परिणति बने? जहां दोष न रहें और गुण प्रकट हों उसे कहते हैं शुद्ध परिणति। तो किसी अशुद्ध तत्त्वका आश्रय लेनेसे परिणति तो शुद्ध न बनेगी, क्योंकि ऐसा तो अनादिसे करते चले आये कि हम अशुद्धका आश्रय लेते। जब जो पर्याय पाया उसे माना कि यह मैं हूं। जब जो गुण की स्थिति हुई उसीमें माना कि यह मैं हूं। इस तरह अशुद्ध तत्त्वका आश्रय हम अनादिसे करते चले आये। अशुद्धका अर्थ क्या है? जिसे बताया था कि वस्तुमें दूसरी वस्तु मिलाया या वस्तुके निजकी बात कुछ निकालकर फेंकी और फिर जो बताया जाय उसे अशुद्ध कहते हैं। क्रोधी हूं, मानी, मायावी, लोभी हूं, मनुष्य, तिर्यञ्च आदिक हूं, व्यापारी, श्रीमान, राजा आदिक रूपसे अपनेको मानना वह अशुद्धका आश्रय है। और कभी इस रूपमें देखनेका यत्न किया, यह चर्चाकी कि आत्मामें अनन्त गुण भरे पड़े हैं, ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, सब गुणोंका वह पिण्ड है, समुदाय है। यद्यपि यह चर्चा शुद्ध तत्त्वको पहिचाननेके लिए की गई है। केवल आत्मा ही आत्मा कोई कहे तो क्या परिचय होगा? तो शुद्ध आत्म तत्त्वके परिचयके लिए गुणोंका वर्णन है। लेकिन कोई यों भी तकता रहे कि हां जैसे बोरे में गेहूं भरे हैं, चने भरे हैं ऐसे ही आत्मामें अनन्त गुण भरे हैं, तो उसने मूलभूत आत्माको तो नहीं पहिचाना। तो गुण तो समझानेके लिए प्रतिनिधिरूपमें पेश किए जाते हैं। इससे निराला कुछ नहीं है। तो भेद एकान्त किया, पर्याय एकान्तमें देखा तो किसी भी रूपमें अशुद्ध तत्त्वका हम सहारा लिए आये, उससे तो कल्याणकी बात न बनेगी। तो खुदमें तो हम अशुद्ध हैं तो उसके सहारेसे कैसे परिणति शुद्ध बने? बाहरमें प्रभुका ध्यान है। प्रभु तो शुद्ध हैं, लेकिन उनका तो हम सहारा ले कैसे सकते? हम यहां बैठे हैं? और परवस्तु होने के कारण हम आलम्बन तो नहीं कर सकते। उनके विषयभूत हो गए, पर ऐसा आलम्बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

मिला कि उस आलम्ब्य पदार्थसे मेरेमें परिणति जागृत हुई, ऐसा तो कोई परपदार्थ होता नहीं। तो परके आलम्बनसे अशुद्धता नहीं, खुद अशुद्ध बना हुआ है। तो शुद्ध पर्याय प्रकट होनेका उपाय क्या रहा? उसका उपाय जैन शासनमें बताया है कि पर्यायमात्रका ही आलम्बन छोड़ दें और अपनेमें शाश्वत अन्तः प्रकाशमान आनन्दधाम अहेतुक सहज निरपेक्ष जो स्वभाव है उस स्वभावकी दृष्टि करें। इसी स्वभावका नाम है भूतार्थ।

(८) **स्वरूपपरिचयमें भूतार्थपद्धतिकी उपयोगिता**—भूतार्थ अनेक नहीं होता, तब ७ तत्त्वोंके रूपमें जो देखा है वह भूतार्थ नहीं। भूतार्थ कहते हैं स्वयं सहज अपने आप होने वाला अर्थ। भाव तो ऐसा ही है चैतन्यस्वरूप। इस चैतन्यस्वरूपको समझानेके लिए महर्षि संतोंने ७ तत्त्व ९ पदार्थोंका प्रतिपादन किया है। यह अभेदको समझनेके लिए भेद द्वारा परिचय करानेका प्रयत्न किया है, इस कारण यह भेद अटपट नहीं है, अनुरूप भेद है। एक तो होता है काल्पनिक और एक होता है अनुरूप प्रतिपादन। तो ९ तत्त्वों द्वारा हम समझते हैं। उन ९ तत्त्वोंका जब भूतार्थ शैलीसे अधिगम होता है तो वे सम्यक्त्वके कारण होते हैं। भूतार्थ शैलीसे अधिगमका अर्थ यह है कि इस प्रकार जानना कि जिस प्रकार भेदसे हटकर अभेदमें पहुंचा जाय। जैसे जीव तत्त्वको ही देखा। जो ७ तत्त्वोंमें जीव नाम है वह भेदरूप जीव है। अखण्ड अभेदरूप नहीं। तो जीवमें जो कुछ जाना, गति इन्द्रिय जातिमें सबको भूतार्थ शैलीसे जानने लगो। और भूतार्थकी शैलीसे जाननेकी पद्धति यह है कि यह किससे प्रकट हुआ है? उसको जानो। इस प्रश्नके उत्तरमें क्या होगा कि जिसकी बात कर रहे हैं वह गौण हो जायगा और बीजभूत तत्त्व मुख्य हो जायगा। जैसे किसी बालकका जब हम परिचय करते हैं तो पहिले उसका नाम पूछते हैं। क्या नाम है? बता देता है। यह तो बालकका बालकरूपसे परिचय बना और जिस वक्त पूछते हैं कि बताओ तुम किसके लड़के हो? तो उस समय बालक गौण हो जाता है और किसके, इस प्रश्नमें जो ज्ञेय है वह मुख्य हो जाता है। तो ऐसे ही जीव जाति, जीव गति ही जीवकी परिणतियाँ इन्हें जाना, वे तो जीव तत्त्वमें रहेंगी और जब यह समझनेकी कोशिश की ये सब किससे प्रकट हुए? इस का मूल स्रोत क्या है? बस भूतार्थ पद्धति बन जायगी। वह है चैतन्यस्वरूप जिससे प्रकट हुआ है वह है एक रूप, जिससे अनेकता जगी है। इसके सम्बन्धमें कुछ लोग कहते हैं कि—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णात्पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है। पूर्णसे पूर्ण निकलते रहने पर भी यह पूर्ण ही अवशेष रहता है, तो वह मूल पूर्ण क्या है? प्रति समयमें जो पर्याय

Version 1

उत्पन्न होती है वह पूर्ण होती है। किसी भी समयकी कोई भी परिणति यह प्रश्न नहीं कर सकती हम अधूरे बन पाये, हमें पूरा बन लेने दो ऐसी कोई परिणति नहीं होती। यह सत् है तो प्रति समयमें जो अवस्था है वह पूर्ण है। खोटा हो, अच्छा हो, कुछ भी हो, आधे हम बन पाये, आधे बनना हमारा शेष है, ऐसा किसी भी परिणतिमें प्रश्न नहीं होता। भले हा छद्मस्थ अवस्थामें अन्तमुहूर्तमें हम जान पाते हैं कि यह अमुक चीज है। जान पाये, जानने में बात तो आयी ऐसी पर होनेमें, निर्माणमें अन्तर्मुहूर्त नहीं लगता। जो राग अनुभवमें आता है वह अन्तर्मुहूर्तका आता है। इसके मायने यह नहीं है कि कोई राग अन्तर्मुहूर्तमें पूरा बनता है। प्रति समय पर्याय पूर्ण होती है, एक समयका राग अनुभवके योग्य नहीं होता, प्रति समय पूर्ण पूर्ण पर अनुभवमें आता है अन्तर्मुहूर्तका पर्याय। तो यों कहा कि जानना शुरू हुआ और बना, इतने में ही अन्तर्मुहूर्त लग जाता है, लगो, फिर भी प्रतिसमय में पूर्ण बनता है परिणमन और पूर्ण ही है यह स्वभाववस्तु और पूर्ण पूर्ण बनता रहता है प्रतिसमय और पूर्ण निकलता रहने पर भी यह परमार्थ, यह स्रोत, यह पूर्णका पूर्ण ही बिराजा रहता है। तो अब प्रश्न हुआ कि ये सब किससे आविर्भूत हुए ? तो भूतार्थनयकी पद्धति बन जाती है। यों भूतार्थविधिसे जीवतत्त्वका परिचयका हुआ अखंड ज्ञायकस्वरूप है।

(९) अजीवादि तत्त्वोंको भूतार्थविधिसे जाननेकी उपयोगिता—अजीवतत्त्वमें कर्म है। कर्म परिणति है। जो भी प्राप्त हो कर्ममें उसके प्रति भी भूतार्थपद्धतिसे प्रश्न होता हो तो वहाँ भी एकत्वमें आयेंगे। जैन शासनका तत्त्वज्ञान विलक्षण अद्भुत उद्यान है। जीवमें ही होने वाली परिणतियाँ भी अजीव हैं। उनमें भी प्रश्न हो जाता है और भूतार्थ शैली बनेगी। तो ये ७ तत्त्व जब भूतार्थसे जाने जाते हैं तो ये एकत्व पर पहुंचा देते हैं। आश्रव कहीं एकसे नहीं होते। निरपेक्ष होकर एक ही पदार्थ अपनेमें आश्रव पर्याय करे सो नहीं होता। हुआ संयोगमें, पर वह आश्रव संयोग दशा ऐसी है कि दोनोंमें ही आश्रव हो रहा, परस्पर अपेक्षा रख रहे, पर परिणमन दोनोंमें पृथक पृथक हो रहा। कर्म वर्गणाओंमें कर्मत्व आना कर्मका आश्रव है और इस जीवस्वभावमें विभावका आना जीवका आश्रव है। तो जीवश्रवका प्रश्न करें। यह किससे आविर्भूत हुआ ? आखिर किसी मनुष्यको देखकर जो अपना सम्बंधित हो, एक बार प्रश्न उठ ही जाता कि यह कहाँसे आया ? और ऐसी जानकारी हुए बिना कुछ चैन सी नहीं पड़ती। तो यहाँ जो आया है विभाव उसकी भी जानकारी करें। कहाँसे आया है ? परमार्थतः किस स्रोतसे आया जीवका विभाव याने उपयोगका उस रूप परिणमन, जैसे कर्म दशाका रंग इस उपयोग भूमिमें झलका है उसके अनुरूप उपयोगका बर्तना, विकल्प होना यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही तो आश्रव है। वह आश्रव, वह विकल्प कहांसे आया ? उसका जनक कौन है ? उस स्रोत का पता लगाओ। वह स्रोत है यह एक भाव, यह जीवत्व। ऐसे ही कर्मत्वमें है, बंधमें ऐसा ही है, सम्वर होनेमें निर्जरा भावमें और मोक्षतत्त्वमें ऐसा ही है। जब भूतार्थ पद्धतिसे यह जाना जाता है तो यह एकत्वका परिचय कराता है और उस एकत्वके परिचयमें सम्यक्त्वका अवसर होता है।

(१०) निराकुल शुद्ध चैतन्यका दर्शन—शुद्ध तत्त्वकी बात चल रही थी कि किसका आश्रय करें तो शुद्ध परिणति हो ? परके आश्रयसे तो शुद्धता होती नहीं, खुद अशुद्ध पर्यायमें है, उसके आश्रयमें शुद्धता होती नही, किन्तु अपने आपमे शाश्वत प्रकाश मान जो स्वभाव है वह शुद्ध है, स्वभाव शुद्ध है। न प्रकट हो तो शुद्ध है, प्रकट हो तो शुद्ध है। उस शुद्धका अर्थ इतना ही है कि परसे विविक्त और स्वयंमें तन्मय—"जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम। राग त्यागि पहुंचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम।" ये जिसके नाम बोले गये उस आत्मामें राग त्याग कर हमें पहुंचना है, कहाँ पहुंचना है ? एकत्व जिन-धाममें। मैं राग छोड़ कर उस निज धाममें पहुंचूं जिस धामके ये सब नाम हैं—जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु, बुद्ध, हरि आदि। जो रागादिकको जीते सो जिन, ऐसा कौन ? ···· यह ही स्वभाव। जो कल्याणमय हो सो शिव, वह कौन ? ···यह ही स्वभाव। जो अपने ऐश्वर्यमें पूर्ण समर्थ हो सो ईश्वर। वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जो अपनी सृष्टिको करता रहे सो ब्रह्मा, वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जिसमें योगीजन रमण करते हैं, तृप्त होते हैं, सो राम वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जिसका प्रताप बड़ा व्यापक है, जिसका सर्वत्र प्रसार है वह विष्णु। वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म परतर हो तभी वह व्यापक बन सकता है। बड़ी चीज, मोटी चीज, व्यापक नहीं बन सकती, स्थूल कभी बड़ा दायरा नहीं रखती। जो सूक्ष्म है उसीका दायरा बड़ा होता है। सूक्ष्मका ही क्षेत्र व्यापक होता है, स्थूल का क्षेत्र व्यापक नहीं होता। पृथ्वी व्यापक नहीं। इस जगह वैज्ञानिक ढंगसे और आपके मध्य लोकके नक्शाके ढंगसे खूब परख लिया जायगा कि पृथ्वी स्थूल है और जल उससे सूक्ष्म है, तो जलका हिस्सा अधिक है, पृथ्वीका हिस्सा कम है। उसका दायरा नहीं कर सकता। और, जलका दायरा इस मध्य लोकमें इतना बड़ा है कि जिसके सामने शायद चौथा अंश भी यह पृथ्वी न हो। असंख्याते द्वीप समुद्रोंमें एक स्वयंभूरमणसमुद्रका ही विस्तार इतना बड़ा है कि सारे द्वीप समुद्रका विस्तार मिलाकर भी उतना बड़ा नहीं है और जो बाकी द्वीप हैं उनको मिला दो तो सारे द्वीप मिलाकर कह सकते हैं कि समस्त जल भागके चौथाई हिस्सा भी यह पृथ्वी नहीं है। जलकी अपेक्षा वायु सूक्ष्म है। तो जल उतना व्यापक नहीं जितनी कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वायु। जहाँ जल है वहाँ भी हवा है और जहाँ जल नहीं वहाँ भी हवा है। पृथ्वीमें भी हवा है, पृथ्वीसे बाहर भी हवा है, और हवासे सूक्ष्म है आकाश। हवा भी उतनी व्यापक नहीं जितना कि आकाश। भले ही यह हवा तीनों लोकों को घेरकर गर्वके साथ चारों तरफ अपना प्रताप फैलाये हुए है— तनुवातवलय है, घनोदधि वातवलय, घनवातवलय। तिस पर भी वह आकाशकी होड़ नहीं कर सकता। उससे बाहर भी आकाश है जिसे अलोकाकाश कहते हैं। और आकाशसे सूक्ष्म है ज्ञान। तो यह ज्ञान सारे लोकमें भी फैला, अलोकमें भी फैला और फिर भी इसकी स्प्रिंग इतनी मजबूत है कि यह भूखा ही रहता है। इतना लोकालोकका ज्ञान कर लेने पर भी इसकी भूख नहीं मिटती अर्थात् ऐसे ही अनेक लोकालोक होते तो वे भी सब ज्ञानमें आ जाते। ज्ञानके कुछ अविभाग प्रतिच्छेदों ने इतना काम कर डाला, ऐसा विष्णु यह ज्ञान है। बुद्ध जो ज्ञानमय हो सो बुद्ध वह है आत्मा। हरि— जो पापोंको हरे सो हरि, वह है आत्मा। आत्मा ही देवता है, आत्मस्वभावमें मग्न होने पर आकुलता नहीं रहती।

(११) प्रभुको निरखकर शुद्ध चैतन्यस्वरूपको निरखनेमें प्रभुभक्तिकी सफलता— प्रभुस्वरूपको निरखनेका प्रयोजन है परमात्मतत्त्वका दर्शन। पर्यायशुद्ध चेतनका परिणमन है स्वभावके अनुरूप, क्योंकि वह परिणमन है स्वप्रत्ययक। ऐसे शुद्ध आत्माको निरखनेपर चैतन्यस्वभावका परिचय होना बहुत सुगम है। परमात्माका वास्तविक परिचय होनेसे आत्मतत्त्वका परिचय होता है, ऐसे ही आत्मतत्त्वका परिचय होनेपर परमात्माके स्वरूपका परिचय होता है। परमात्माका अभिवंदन और आत्मतत्त्वकी उपासना ये दोनों स्थितियाँ होती रहें एतदर्थ 'ॐ नमः शुद्धाय ॐ शुद्धं चिदस्मि' ऐसी वंदना बनायें। यह तो है परमात्मस्मरणपूर्वक आत्मस्मरणकी बात। अब शुद्ध अंतस्तत्त्वका स्वरूप पहिचानकर अपने आपको शुद्ध अंतस्तत्त्वरूप भावित करके अपनेको शुद्ध चिन्मात्र अनुभवनेके पौरुषमें ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ऐसी उपासना बनायें।

मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं।

(१२) ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वकी निरखमें क्लेशका अभाव— मैं ज्ञानमात्र हूं, इसका जितना अधिक मनन और इसरूप अपने ज्ञानका भवन होगा वही मोक्षमार्ग है, वही शान्तिका उपाय है, वही समाधिका मार्ग है। मैं ज्ञानमात्र हूं। मात्रका अर्थ है सिर्फ, सिर्फ यही यही, अन्य कुछ नहीं। ज्ञान ज्ञान ही मैं हूं। आत्मा आकाशकी तरह अमूर्त है, निर्लेप है। इसमें किसी परका संयोग नहीं। ऐसा होनेपर भी आज जो दशा यह दिख रही है कि संयोग मे पड़ा, शरीरसे बाहर निकलकर बैठ नहीं सकता, परतंत्र है, बन्धन है, दुःख है, ये सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

किस प्रकार हुए ? तो जैसे एक तो होता है बन्धन और एक होता है खुद बँध जाना। तो परकी ओरसे तो इसका बन्धन नहीं है, परतंत्रता नहीं है, क्योंकि यह अमूर्त है। अमूर्त अमूर्त को बाँध नहीं सकता, अमूर्तको मूर्त बाँध नहीं सकता। जैसे आकाशको कोई अमूर्त द्रव्य नहीं बाँधता और मूर्त भी नहीं बाँधता। तो कोई परपदार्थ मेरे आत्माको बाँधता नहीं, किन्तु यह मैं अज्ञानवश परमें रमकर, परका स्नेह रखकर बँध जाता हूं। यह ही आत्मा परदृष्टि करके बँध गया है। अब प्रश्न यहाँ भी होगा कि ऐसा अपने आप जीव क्यों बँध गया ? जब यह स्वरूपतः अद्वैत है अपना आत्मा है तो अपनी मर्जीसे भी क्यों बँध गया। क्यों मर्जी की ऐसी ? तो उत्तर तो आना ही पड़ेगा कि यह निमित्तनैमित्तिक योगकी बात है। अब इन सारे दंद-फंदसे छूटनेका उपाय क्या है ? किसी परपदार्थका अनुग्रह करें, निग्रह करें, बिगाड़ सुधार करें, आश्रय लें, ये दुःख छूटनेके उपाय नहीं हैं। केवल एक ही उपाय है दुःखसे छुटकारा पानेका कि मैं अपनेको यह समझ लूँ कि मैं ज्ञानमात्र हूं। प्रयोग करके भी देखो। जब यह समझ रहे हों कि मैं मनुष्य हूं, अमुक हूं, अमुक नामका हूं, ऐसी पोजीशनका हूं तो उसके अनुरूप विकल्प होते और इसको दुःखी होना पड़ता, और समझ जाय कि मैं तो ज्ञान ज्ञानमात्र। जैसा मैं हू वैसे सब हैं, जैसा सबका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है। ऐसा जब ज्ञानमें आता है तो चूँकि विशेषता न आयी, सर्व समता हुई, वहाँ क्लेशका नाम नहीं रहता। मुक्ति पाना एक सर्वोत्कृष्ट वैभव है, किन्तु मुक्तिका पाना यों मोहके ढंगोंसे न होगा। जिसने अपने श्रद्धा बलसे समस्त परपदार्थोंसे उपेक्षा कर लिया, जिसे कहेंगे कि परमाणुमात्र भी राग न रहा, ऐसा एक आन्तरिक प्रयत्न कर लिया तो मुक्तिका मार्ग मिलेगा। उसमें एक ही निर्णय है। कुछ यह भी करें, कुछ वह भी करें, कुछ स्वाध्याय भी करें, कुछ बच्चोंसे मौज भी रखें, ऐसी सब तरहकी बातोंसे मार्ग न मिलेगा। उसके लिए निर्णय एक ही है—सबसे कटकर ही रहना। अपनेको विविक्त ही रखना, अपनेको ज्ञानमात्र निरखना, सबसे निराला देखनेका प्रतीक है ज्ञानमात्र निरखना। केवल ज्ञान ज्ञान ही मैं हूं, ज्ञानसिवाय मैं और कुछ नहीं। ऐसे अनुभवमें, ऐसी बुद्धिमें सर्व इच्छायें दूर हो जाती हैं। मैं ज्ञान ज्ञान ही हूं, ज्ञान सिवाय और कुछ कर सकता नही, ज्ञानसिवाय कुछ भोग सकता नहीं, ज्ञानको छोड़कर रह सकता नहीं। ज्ञान ही ज्ञान मेरा स्वरूप है। ज्ञान ही वैभव है, ऐसा अपनेको मात्र ज्ञान ज्ञान रूप ही निरखनेमें आये तो उसकी सर्व प्रवृत्तियोंमें अंतर आ जाता है और एक यह ही कला न हो पायी तो बाकी जितनी कलायें हैं वे सब बेकार हैं।

(१३) **एकत्वविभक्त ज्ञानस्वरूपके अवधारणकी महिमा**—इस ज्ञानमात्र अनुभवका किन्हीं दार्शनिकोंने आनन्दानुभव नाम दिया, किन्हीं दार्शनिकोंने मात्र विज्ञान नाम दिया,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और किन्हीं दार्शनिकोंने शून्य नाम दिया। यद्यपि यह अनुभवशून्य नहीं है, लेकिन इसमें रागद्वेष विकल्प आदिक रंच नहीं, जिनसे कि अपनेको सम्पन्न समझता था वह कुछ नहीं, उनसे शून्य हो गया है। और जो कुछ है वह बतानेमें नहीं आता, अतएव उनकी दृष्टिमें शून्य हो रहा। जिसने मात्र विज्ञान माना ज्ञानाद्वैत उन्होंने आत्माका जो एक असाधारण गुण है उसका ऐसा एकान्त किया कि एक तत्त्व ही ऐसा गढ़ दिया। और कुछ नहीं, पुद्गल नहीं, भौतिक नहीं, भींत नहीं, लोग नहीं, गुरु नहीं, शिष्य नहीं, यह तो एक भ्रमका ख्याल है। ज्ञान ही ज्ञान है। जैसे स्वप्नमें सारी चीज समझमें आती है, लेकिन है कुछ नहीं, इसी तरह ज्ञानतत्त्वसे भ्रष्ट होनेपर ये सारी चीजें समझमें आती हैं, और है कुछ नहीं। इतने एकान्तमें चलें, पर जैनसिद्धान्त यह बताता है कि ज्ञान अज्ञान स्व पर अच्छा खोटा चेतन अचेतन सबको ठीक समझ लें। एक इस डरकी वजहसे कि हम अचेतनको मानेंगे तो हम इस चैतन्यस्वरूपकी अनुभूतिमें न आ सकेंगे ऐसा डर मत करें। बजाय डरनेके स्वरूप सत्त्व समझें जिससे कि उपेक्षा हो जाय। समस्त परकी उपेक्षा करें। अपने आपको निरखें कि मैं ज्ञानमात्र हूं बड़ी समस्यायें सामने हैं। शरीरको मच्छर काटे तो ज्ञानमात्र हूं यह वातावरण बिगड़ जाता है। उस मच्छरपर दृष्टि जाती है। तेज भूख लगती तो ज्ञानमात्रको कहीं धर देते हैं। वेदना सही नहीं जाती है। है स्थिति ऐसी, लेकिन यहां भी तो अंतर देखा जाता है। कोई मच्छरसे बहुत डरता है कोई कुछ मच्छरोंसे नहीं डरता। किसीको भूख भी मानो थोड़ीसी हो तो उसीको बड़ा रूप देकर परेशान होते हैं प्रयत्न करते हैं और कोई बहुत भूखा रहनेपर भी समतासे रहता है। तो यह अंतर यह प्रमाणित करता है कि जिसकी जितनी अधिक ज्ञानदृष्टि है शरीरको पर मानकर शरीरसे उपेक्षा है उसमें ये अंतर आ गए। यदि बन जाती ऐसी दृष्टि और मंदता कि इस ज्ञानोपयोगको मात्र ज्ञानस्वरूप ही रहना तो शरीरको गीदड़ी भी चीथे, सिंह भी खाये तो भी उसका भान नहीं होता। अपराध तो अपना है कि इस शरीरमें आतमबुद्धि बनायी या कुछ ज्ञानदृढ़तामें शिथिलता लायी तो अपने आप ही दुःख होगा।

(१४) दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वका अनुभव—दुःखसे मुक्त होनेका उपाय यह आराम नहीं, ये संसारके क्षणिक सुख नहीं, पंचेन्द्रियके विषय नहीं, मानका विषय नहीं, कीर्तियश प्रतिष्ठा आदिक ये सब दुःखोंसे छूटनेका उपाय नहीं, यह सब कहलाता है उपाधि। मोहमें लोग उपाधिको तरसते हैं और उपाधि शब्द सुनकर, अपनेमें उपाधि लगाकर खुश होते, लेकिन उपाधि क्लेश नामको सार्थक करने वाली है। उपाधिका अर्थ है— उप आधि, आधेः समीपं इति उपाधिः, आधि मायने मानसिक क्लेश। मानसिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्लेशका जो प्रतिनिधित्व करे उसका नाम है उपाधि। जो भी परतत्त्व है, अनात्मतत्त्व है वह सब उपाधि है। उसका लगाव कष्टका ही हेतुभूत है। तो जिसने अपने भीतर इतनी दृढ़ता कर ली हो कि समस्त अनात्मतत्त्वोंसे मेरा कटाव है। मैं ज्ञानमात्र हूं, अन्य जीवोंकी दृष्टिमें वह पागल है, क्योंकि दुनियाके लोगोंसे उसका मेल खाता नहीं, ऐसा देखकर भी कुछ विकल्प न लायें। कोई न पूछे तो मत पूछो, मुझे मोहियोंकी सुमारीमें नहीं रहना है, मुझे तो प्रभुकी सुमारीमें आना है। यहाँसे तो नाम कटाना है। संसारी गुटमें से हमको नाम कटाना है और परमात्माके गुटमें अपना नाम लिखाना है। तो जिससे नाम कटाना है उसमें मोह हो, राग हो, लगाव हो तो ये तो कटानेके लक्षण नहो। किसी संस्थाके उद्देश्यका पूरा पालन करें तो उस संस्थासे नाम कैसे कटेगा ? यह संसार मोह संस्था है और इसका उद्देश्य है कि परपदार्थमें मोह रागद्वेष करना, इन्द्रियके विषयोंमें प्रीति करना यश कीर्ति मनोज्ञ विषयोंको बढ़ावा देना यह इसका कार्य है, उद्देश्य है। और इसके मेम्बर हैं अनगिनते जीव। अब इस संसार संस्थामें उद्देश्योंका इस ईमानदारीसे पालन करते रहें और चाहें कि यहांसे नाम कट जाय तो कैसे कट सकता है ? उल्टे चलें तो नाम कटेगा, नहीं तो न कटेगा। इस संसारसंस्थाके जो उद्देश्य हैं उनका उल्लंघन करें, ये मेम्बर फिर न चाहेंगे उसे। यह तो हमारे ढंगसे रहता ही नहीं, और उसको पागल कहेंगे, ऐसा कटाव कर सकनेकी हिम्मत है तो मोक्षमार्गपर नाम लग जाय। और इतना कटाव करनेकी हिम्मत नहीं है श्रद्धामें तो मोक्षमार्गका नाम मत लीजिए, नहीं तो ये संसारी मेम्बर रुष्ट हो जायेंगे तो घरमें रहना भी कठिन होगा और बाहर कुछ मिल नहीं रहा। तो मुक्तिमार्गमें लगनेके लिए श्रद्धामें पूर्ण रूप से कटाव होना चाहिए था कि मैं ज्ञानमात्र हूं, अन्य रूप हूं ही नहीं, यह स्वाधीन काम है। इसमें कोई दूसरी बाधा डाल सकने वाला नहीं है। मान लो कमजोरी है, घरमें रहना पड़ता है, पिताने या किसीने जबरदस्ती की कि तुमको यहाँ ही बैठना होगा, तुमको यह ही काम करना पड़ेगा, बैठे हैं, कर रहे हैं, तो इस श्रद्धामें कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता कि तुमको यह श्रद्धा करनी होगी। इसपर किसीको जोर नहीं। परिस्थितियाँ अन्य बातोंमें विवश करें, पर श्रद्धा हटानेके लिए कोई परिस्थिति विवश नहीं कर सकती। खुदमें ऊधम मचावें तो यह श्रद्धासे बिगड़ेगा। दूसरा कोई इसकी श्रद्धाको नहीं बिगाड़ सकता।

(१५) **देहकी अशुचिताके ध्यानका अन्तस्तत्त्वके दर्शनकी दिशामें सहयोग**—भैया ! अब अन्तस्तत्त्वका करिये अनुभव। श्रद्धा बनाओ कि मैं ज्ञानमात्र हूं। ऐसी श्रद्धा बनानेके लिए एक यह भी उपाय करिये कि इस शरीरका सही दृश्य ध्यानमें लायें। सबसे अधिक ममता जीवको शरीरसे होती है। और शरीरकी ममताके आधारपर ही वस्तुओंमें ममता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती है। तो देहमें ममता न रहे, यह देह न रुचे। इसके लिए कुछ देहका ऊपरी रूप भी देखिये। इस मनुष्यको शृङ्गारको क्यों जरूरत पड़ी? पशु आदि जीवोंको देहके शृङ्गारकी कुछ आवश्यकता नहीं देखी जाती। जो जैसा है वैसा है। यहाँ जो व्यग्रता लग रही है, इस का कारण है कि यहाँ द्वन्द्व मचा है। शरीर तो अपवित्रताके लिए होड़ कर रहा है और यह जीव शरीरके प्रति रागके लिए होड़ कर रहा है। इन दो में होड़ मच गई। जीव इस शरीरसे राग करनेमें बढ़ना चाहता और शरीर अपवित्रतामें बढ़ रहा, तो इस अपवित्रताको ओझल करनेके लिए इस जीवने उपाय निकाला शृङ्गार जिससे कि कुछ थोड़ा नजरसे तो हट जाय इसकी अपवित्रता। मुखमें क्या भरा, नाकमें क्या भरा, इस देहमें क्या भरा? पर यह बात, ये अशुचिताकी बातें ध्यानमें न रहें और यह ठीक जंचने लगे तो नाकमें कोई लड़ी पहिन ली, दो मोतीके दाने लगा दिये तो चमकती तो यह मोती है, नाक नहीं चमकती, पर वे अपवित्र चीजें ध्यानमें न रहें तो इस अचेतनकी कृपासे इस शरीरकी भी कुछ शोभा जंचने लगी। यह उद्यम किया गया। बढ़िया बढ़िया चमकीले वस्त्र पहिनना, शरीरमें चमकीलापन नहीं है, वस्त्रमें चमकीलापन है, वस्त्रके रंग चमचमाहट इनसे शरीरकी अशुचिता का ध्यान बदल जाय और ये भी चमकीले जंचने लगें, यह ही तो उद्यम है। शरीरमें क्या रखा? भीतरमें निहारो, हड्डी, मांस, मज्जा, खून, चमड़ी और उसके ऊपर वे रोम। अब ये रोम कहाँ हटायें। खूनका विकार है बाल, इन्हें कहाँ हटायें? तो इसका तो कोई उपाय है नहीं तो इन दोनोंने उपाय बना लिया स्त्री पुरुषोंने कि चलो और उपाय तो बनता नहीं इस शृङ्गारसे कुछ मन भर लेंगे, इस देहकी अपवित्रताका उपयोग बदल जायगा, लो यह शृङ्गार तो धोखा हो गया।

(१६) मोहकी अपवित्रताका प्रभाव—देखो शरीरकी सच्चाई दृष्टिमें लो। जिस शरीरमें हम रह रहे उसकी भी सच्चाई देखो जो शरीर दिख रहे हैं उनकी भी सच्चाई देखो। इस शरीरमें जीवके संबंध बिना अशुचिता कुछ नहीं। अचेतन है, जड़ है, अपवित्र है अशुचि है, और इस शरीरको मानो गाली दो चाहे यह शरीर अपवित्र है, लेकिन अपने आप खराब नहीं, आहार वर्गणाओंसे ही तो शरीर बना, अचेतन कोई अपवित्र नहीं। इन आहार वर्गणाओंको इस मोही जीवने ग्रहण किया, तो इन पवित्र वर्गणाओंका जिनमें माँस नहीं, इन आहार वर्गणाओंको अपवित्र किया गया है। अगर कोई ढंगका न्यायालय होता, शरीर और जीव इन दोनोंका मुकदमा चलता तो अपराध जीवका ही माना जाता। दण्ड जीवको ही मिलता। शरीरका तो सीधा बयान है कि साहब जब तक यह नवाब साहब न आये थे, यह जीव न आया था तब तक हम बहुत अच्छे थे, आहार वर्गणायें। मुझमें मांस न था,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ गंदी चीज न थी, पुद्गल था, परमाणु था, स्कंध था, जब यह आया तो उसके आते ही पहले तो मुझमें दो टूक पड़ गए। हम सब एक रस थे, आहारवर्गणायें सब एकरस थीं। इस दुष्टके आनेसे मुझमें दो फाटे पड़ गए। कुछ तो बन गए नम्र और कुछ रह गए कठोर। कुछ बन गए गीले और कुछ बन गए रूखे। अब इस आधारपर जो सबसे पहले यह भेद डाला इस कूटनीतिज्ञने, उसके बाद फिर ऐसा भेद पड़ता गया कि वह सब अपवित्रताका रूप आ गया। देखो मुझमें अपवित्रता आयी तो इस मोही जीवके सम्बंधसे आयी, इसलिए यह जैसे "अहाना है कि—उल्टा चोर कोतवालको डांटे" और अहाना है—"राहमें हगे आँख दिखाये।" तो ऐसे ही इस जीवने हमारी ऐसी बरबादी की, हमको ऐसा अपवित्र कर दिया सा अशुद्ध अपवित्र अशुचि भवनमें जुल्म ढाने वाला यह जीव है और यह जीव उल्टा हमारी बदनामी कर रहा है यह शरीर अपवित्र है तो यहाँ भी संघर्षमें देखो तो मूलमें यह मोह अपवित्र है। और उन मोही जीवोंमें भी स्वभाव और विभाव ये दो वादी प्रतिवादी बन जायें तो निर्णय होगा कि जीव अपवित्र नहीं। स्वभाव अपवित्र नहीं। यह विभाव, यह मोह ये परिणतियाँ ये अपवित्र हैं, लेकिन ये परिणतियाँ स्वतंत्र तो नहीं, स्वयं सत् तो नहीं। सत् तो एक ही है। केवलद्रव्य। न तो गुण सत् है, न पर्याय सत् है। सत् तो एक है वस्तु, वह वस्तु गुणपर्यायात्मक है, गुणसदंश है, पर्यायसदंश है, सत् एक वस्तु है। उस वस्तुमें भी तीन भेद पड़ते हैं। द्रव्य गुण पर्याय तो तीन अंश हैं और इसी कारण कहा गया कि द्रव्य गुण पर्याय समवस्थित अर्थ है। तो पर्याय स्वतंत्र सत् नहीं है, द्रव्यका ही अंश है इसलिए पर्याय अशुद्ध है, इसको कहें तो द्रव्य अशुद्ध है यह कहा जायगा। अब द्रव्यका जो स्वभाव है उस स्वभावकी दृष्टिसे कहा जायगा कि यह अशुद्ध नहीं है। उस ही स्वभावको नजरमें लेकर अनुभव करना कि मैं ज्ञानमात्र हूं।

(७) **ज्ञानस्वरूपकी निर्भारता**—इस ज्ञानस्वरूपमें किसी अन्यका प्रवेश नहीं है। प्रवेश हो तो ज्ञानका स्वरूप नहीं बन सकता। जैसे आकाशमें किसी चीजका प्रवेश नहीं। यद्यपि ऐसा दिखता है कि आकाशमें तो अनेक द्रव्योंका अवगाह है, वह एक बाहरी दृष्टिसे दिखता। परमार्थसे देखें तो आकाश स्वरूपमें किसी अन्यका प्रवेश नहीं। यदि प्रवेश हो तो आकाश ही न रहेगा। मैं ज्ञानस्वरूप हूं, मेरे ज्ञानस्वरूपमें किसी अन्य वस्तुका प्रवेश नहीं। अहो फिर मुझपर भार ही क्या है ? कुछ भार नहीं, कुछ मेरेपर वजन ही नहीं आता। ज्ञानमात्र हूं, उसपर कुछ बोझ ही नहीं लग पाता। पर जो अपनेको बड़ा भारवान अनुभव करते उसका कारण है विकल्प। विकल्प होनेसे अपनेको भारसहित अनुभव किया जाता है। मुझपर गृहस्थीका बड़ा भार आ गया। पिता गुजर गया, माँ गुजर गई, सारा भार मेरेपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आ गया। क्या अर्थ है ? याने जो छत है, भींत है, लोग हैं, ये सबके सब इस ज्ञानपर आ गए क्या ? इस ज्ञानके टूक हो गए क्या ? इसका विकल्प किया, यह भी सम्हालना, यह भी सम्हालना, इसको निभाना, जहाँ ज्ञानमें भीतर विकल्प मचे, ज्ञान गड़बड़ हुआ, विकल्पका भार आ गया, इसमें भार आता है तो विकल्पका और विकल्प बनता है परको अपनानेसे, परका अपनाना छोड़ दें और स्वयंको ज्ञानमात्र अनुभव करें तो वहाँ भारका कोई नाम नहीं। मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं, अतः निर्भार हूं। यह ही यह ज्ञान-स्वरूप दृष्टिमें आये, बाहरमें कुछ चाह न जगे, मैं ऐसा समझता हूं, यह भी बतानेका, दूसरों को जतानेका भाव न जगे। इतना तक कटाव हो तो खुद खुदमें रमनेका अवसर पा सकते हैं। आप सोचेंगे कि शास्त्रसभा, तत्त्वचर्चा, स्वाध्याय ये उन्नतिके साधन माने गए तो क्या ये मिथ्यात्व भरे हैं ? नहीं। उन्नतिके साधन हैं, मगर इन सब बातोंमें इस ज्ञानीका लक्ष्य रहता है कि इस माध्यमसे मैं अपने आपकी बात बोलूँ, सुन लूँ और अपनी दृष्टिको स्वच्छ बनाऊँ और अपने भीतरमें काम निकालूँ, यह अवसर है सारी तत्त्वचर्चामें, प्रवचन बोलनेमें, लेखन करनेमें। अगर दूसरोंको यह जतानेका भाव है कि लोग समझ जायें कि हाँ हमने ठीक समझा है तो ऐसा अगर जतानेका कुछ भी भाव है तो वह मिथ्यात्वका अंश है। किसको जताना ? कदाचित् ऐसा हो सकता कि कोई ज्ञानी पुरुष मिला तो अपनी कोई बात ठीक करनेके लिए प्राप्त कर ली जाय, वहाँपर भी इसकी स्वयंको ईमानदारी है। कल्याण इस गुप्तका होना है। कल्याण भी खुद गुप्त स्वरूप है। कल्याणकी विधि भी गुप्त है। गुप्तको गुप्तमें गुप्तका लाभ लेना है। उसके लिए बनावट, दिखावट, सजावट, मिलावट मोह राग-द्वेष आदि ये सब बातें विघ्न हैं। विघ्नोंसे दूर रहकर निर्भार गुप्त ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वका अनुभव करना चाहिये।

(१८) सर्व होनहारोंमें ज्ञानवैभवका आधार—जीवका वैभव है ज्ञान। जीवको सुख दुःख होता है ज्ञानके विपरिणमनसे। छुटकारा है तो ज्ञानकी समीचीनतासे। इस कारण अनेकानेक उपाय करके ज्ञानको सही बनायें और अपने आत्माको समस्त दुःखोंसे छुटकारा देनेका उपाय सिवाय तत्त्वज्ञानके और कुछ न होगा। उसीकी दृढ़ता, उसीका उपयोग, उसीमें रमण इसीको कहते हैं सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। तो वह तत्त्वज्ञान बना कैसे, इसके लिए जैन शासनका एक उपहार है स्याद्वाद। वस्तुकी परीक्षा अनेक दृष्टियोंसे करलें। चूंकि प्रत्येक वस्तु सदा रहती है और उसमें प्रतिसमय नई नई हालत बनती है। तब दो बातें तो मानना आवश्यक ही होगा—सदा रहना और प्रति क्षण नया-नया होना, इन दो बातोंसे अलग रहकर किसी तत्त्वका अस्तित्व नहीं रह सकता। तो जो कुछ भी है उसमें ये दो बातें अवश्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही पायी जाती हैं। इस ही को जैन शासनके शब्दोंमें कहा गया है—द्रव्य और पर्याय। प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक होती है। तो कोई केवल द्रव्यदृष्टिका एकान्त करके वस्तुको समझना चाहे तो सही सही न समझ सकेगा। कोई पर्यायका एकान्त करके वस्तुस्वरूप समझना चाहे तो नहीं समझ सकता, ऐसा किया है अनेक दार्शनिकोंने जैसे केवल द्रव्यदृष्टिका एकान्त किया है तो उस एकान्तमें यह समझमें आया कि एक ब्रह्म है, अपरिणामी है, सर्वथा निर्लेप है, प्रभाव हीन है, तो किन्हींने पर्यायका एकान्त किया तो उनकी समझमें आया कि प्रति क्षणमें नया आत्मा बना करता है। जो पहले है सो बादमें नहीं रहता। जैसे कोई किसी पुरुषका परिचय पाये वहाँ कोई बताये कि यह तो पिता ही है तो उसका मतलब हुआ कि सभीका पिता ही है ऐसा अगर कोई समझेगा तो वहाँ तो लड़ाई छिड़ जायगी। कोई कहे कि यह तो पुत्र ही है तो भी परिचय नहीं मिलता। जब नाम ले ले कर, अपेक्षायें लगाकर बोलेंगे—इसका पुत्र है, इसका पिता है, अमुक गाँवका है, अमुक व्यापार करता है, अनेक दृष्टियाँ लगाकर बतायेंगे तो पूरा परिचय होगा। इसी तरह वस्तुका पूरा परिचय अनेक दृष्टियोंसे होता है। स्याद्वाद यह एक अलौकिक ढंग है भगवानका बताया, प्रभुका उपदेशा, जिसके बिना हमारा न लोकमें गुजारा न धर्ममें गुजारा। तो ऐसे स्याद्वाद शासनको हमने पाया है तो उसका सदुपयोग करें। वस्तुस्वरूपका निर्णय बनायें।

(१८) **अहिंसामें तत्त्वज्ञानकी उपयोगिता**—देखो तत्त्वज्ञानका प्रयोजन है अहिंसा। यह जीव कुछ भी विकार न करे, कोई रागद्वेष हममें न जगे और यह सहज जैसा है अपने आपमें बस जाय, बस यह ही ज्ञानका उत्कृष्टका फल है। जो धनकी होड़ करे, इज्जतकी होड़ करे, लौकिक बातोंकी होड़ करे वह बिल्कुल फिसड्डी हो गया और जो एक आत्मदृष्टि करे, अपने स्वरूपमें मग्न होनेका पौरुष बनाये, धुन बनाये वह पवित्र आत्मा संसार संकटोंसे छूटेगा, पवित्र बनेगा। तो करने योग्य काम यह ही है। बाहरी बात जानें, पर हमारा अधिकार ही कुछ नहीं, बाह्यका निग्रह अनुग्रह मेरा कर्तव्य नहीं है। यह तो उदयानुसार थोड़ेसे हो पौरुष में स्वयं होता है तो तत्त्वज्ञान करें स्याद्वादका उपाय बनाकर और उसके फलमें अहिंसामय अपनेको बनाओ किसी भी जीवका बुरा मत हो, सब जीव सुखी शान्त हो, ऐसा मन बनाओ, इसमें कुछ आपका बिगड़ता है क्या ? ···शान्ति मिलती, आनन्द मिलता। लेकिन यह भी कठिन लगता मोहियोंको। कषायसे कितना प्यार है मोहियोंको कि जिस किसी पुरुषपर कषाय उत्पन्न हो गई हो उसके प्रति बुरा विचारना, उसका बुरा करनेकी भावना चित्तमें आने लगती है। कितना ही समझाये कोई कि किसी भी परका बुरा न बिचारो, इससे तुम्हें कुछ मिलता भी नही है, उल्टी बरबादी है, मगर कषायके वशमें इतना है यह प्राणी कि इतना भी करनेमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वर्तमानमें असमर्थ हो रहा कि यह सबकी भलाईकी बात सोच ले, मनसे सबके हितका चिन्तन बनावे। अहिंसाका व्रत पालनेके लिए पहली सीढ़ी जिसके बिना कुछ भी आगे कदम नहीं बढ़ सकता, यह है कि सबका भला विचार बनावें। सब सुखी हों और जितनी सामर्थ्य है दूसरे के दुःखके निवारणमें लगें। देखो मार्ग बिल्कुल साफ है। चलनेका जिसका भाव नहीं है उस को मार्ग दिखता नहीं, जिसका चलनेका भाव है इस असार संसारसे निवृत्त होनेका भाव है और उसको हृदयसे भी सब साफ दिख जायगा कि हमारा कर्तव्य यह है। अहिंसा सर्व प्राणियों का भला सोचना। सब सुखी हों, ऐसी जिसकी भावना रहेगी वह भी सुखी रहेगा और वर्तमानमें भी समझमें आयगा कि यदि किसी भी क्षण मनमें यह भावना जगती है तो वह खुद दुःखी है तो उसकी यह भावना जगती है कि मैं इसे दुःख पहुंचाऊँ। खुद दुःखी हुए बिना कोई दूसरेको दुःख पहुचानेकी भावना बना ही नहीं सकता। और फिर इसमें दुःखी करनेके उपायमें प्रयत्न कर-करके यह दुखी हो जाता। तो जिस बातमें पहले दुःख, बाद में दुःख उस काममें हाथ ही क्यों लगाते अर्थात् किसी भी जीवके बारेमें बुरा ही चिन्तवन क्यों करना, सबका भला विचारें।

(२०) **ज्ञानीके अहिंसाभावकी नैसर्गिकता**—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी योद्धा जो कि संग्राममें युद्ध कर रहा हो उसका भी भीतरमें यह भाव रहता है कि मेरे द्वारा किसी भी जीवका अकल्याण न हो। ऐसा सुनकर लोग हैरान हो जायेंगे कि कैसे हो सकता है कि दूसरोंसे लड़ रहा और दूसरोंके अकल्याणकी भावना नहीं है मनमें। भीतरी विश्वासकी बात सही हो और परिस्थितिवश चेष्टाएँ करनी पड़ती हों ऐसी स्थितियाँ होती हैं कि नहीं ? अनेक उदाहरण मिलेंगे। तो चूंकि इन उदाहरणोंमें कोई जान (प्राण) जानेकी नौबत नहीं है सो लोग झट समझ लेंगे और यहाँ युद्धमें जान (प्राण) जानेका ख्याल हैं सो समझमें न आयगा। मगर रीति नीति पद्धतिका मिलान करे तो समझमें आयगा। लड़कियोंका विवाह होता है, वे अनेक बार स्वसुराल हो आती हैं, मानो १० बार स्वसुराल आयी गई, ११वीं बार जाना है तो यद्यपि उनके चित्तमें यह बात रहती है कि अब तो बरसातके दिन हैं, कहीं घरमें पानी न चू जाय, गेहूं वगैरह न खराब हो जायें, झट घर पहुंचना है, यों उनके मनमें स्वसुराल जानेकी उमंग है, उत्साह है, फिर भी जाती हैं तो उन्हें परिस्थितिवश रोना पड़ता है, क्या करें ? परिस्थिति रोनेको बाध्य करती है। ऐसे ही यहाँ समझिये कि कोई ज्ञानी योद्धा युद्धमें संग्राम करता है तो भी उसके मनमें यही भावना रहती है कि किसी भी प्राणीका मेरे द्वारा अकल्याण न हो। हाँ परिस्थिति उससे युद्ध कराती है। इन स्थितियोंका प्रमाण यह है कि जब कभी थोड़ा अवसर मिलता है तो वह उसकी भलाईके उपाय बनाता है, बचानेके उपाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बनाता है। धर्मके प्रतिकूल उसकी चेष्टा नहीं रहती। तो घरमें गृहस्थीमें कहीं भी रह रहे हों तो वहाँ कोई कठिन परिस्थिति नहीं है। सबका भला विचारें और इससे बढ़कर फिर यह कदम है कि किसी भी चेष्टामें राग मत करें। बस यह ही अहिंसाका रूप है। अपने आपको न सताना सो ही वास्तवमें अहिंसा है। जो रागद्वेष मोह करता है वह अपने आपको झुलसा देता है, बरबाद कर देता है सो उसकी यह हिंसा है। अपनेको सत्य सही प्रसन्न रखनेका नाम अहिंसा है। वैषयिक सुखोंमें राग हो तो उसमें सत्य प्रसन्नता तो नहीं रहती।

(२१) **अहिंसाकी आराधनामें कष्टसहिष्णुताका अद्भुत सहयोग**—हम सबका कर्तव्य है कि हम अहिंसासे अपनेको पवित्र कर दें, इन सब उपायोंपर कौन पुरुष चल सकता है जिसको कष्ट सहनेका अभ्यास हो। जो जरा जरासे कष्टोंसे अपनी दुम दबाकर बैठ जाय वह पुरुष क्या आगे बढ़ सकता है? कष्ट तो माननेकी चीज है। जो जितना मान ले उसे उतना ही कष्ट है। एक ही घटना १० जगह होती है तो कोई अधिक दुःखी होता है, कोई कम दुःखी होता है और कोई दुःखी होता ही नहीं। क्या बाहरमें कष्ट रखा है? मगर बाहरसे कष्ट होता तो सबको एकसा ही कष्ट होना चाहिए। कोई दुःख मानता, कोई नहीं, उसका कारण क्या है कि जिसने अपनेमें कष्टके लायक कल्पनायें कीं वह कष्टमें है और जिसने अपना ज्ञानबल सम्हाला वह कष्टमें नहीं है, फिर भी समागममें रहकर जो बात आती है कष्टकी उनका कुछ होता तो है प्रभाव, लेकिन उसके सहनशील बनो। जैसे बुन्देलखण्डमें लोग कहते हैं नखरे करना—कुछ पुण्यका उदय हो—शरीरका नखरा करना, बड़ी सुकुमालता दिखाना, मान आ जानेका नखरा, दसों बार कोई मनाये, थोड़ा लोग मनाने लगें, नखरे बन जाते हैं। अरे इस दुःखमयी संसारमें किसपर नखरा करते हो? सब असार बातें हैं। नखरा तो सच-मुचका नखरा है। जो खरा नहीं, जो भला नहीं, उसीका नाम नखरा है। भला कैसे हो सकता है? तो नखरेबाजी छोड़ दो, सीधे सरल रहो। अपवादकी कोई बात ही न हो। सब एक समान हैं। किसीके धन बढ़ गया तो क्या हुआ? ज्ञान बढ़ गया तो क्या हुआ? लोग इज्जत करते हैं तो क्या हुआ? अभी तो बन्धन ही बन्धन है। जीवका जो एक स्वतंत्र भाव है उसकी जब तक शुद्ध व्यक्ति नहीं है तब तक तो जीव संकटमें ही है। नखरेसे काम नहीं चलनेका। सीधे रहो, काममें जुटो, ज्ञानमें बढ़ो, अहंकारसे हटो तो अपनी भलाईका मार्ग निकलेगा।

(२२) **कष्टसहिष्णुता और कषायहीनताका प्रसाद**— भैया! कष्टसहिष्णु बनो। कष्ट सहिष्णु होनेके साथ-साथ वास्तविक नम्र रहो। कषायोंका परिहार करो। समागममें जो जो भी जीव मिलते हैं वे सब भगवानस्वरूप ही तो हैं। उस भगवत्स्वरूपके सामने गर्व करनेका

अवकाश क्या ? सबका एक ही तो स्वरूप है । पर्यायमें अन्तर है, सो वह कर्मकृत लीला है । उसका ही यह सब रंग है, वह अन्तर पड़ा है । और जीव जीव ये सब स्वरूपमें एक समान हैं । यहां किसपर गर्व किया जाय ? जो गर्व करे वह अज्ञानी । उसको परमात्मस्वरूपका दृढ़ परिचय ही नहीं तब ही तो गर्व होता है । जो मैं हूं सो ही हूं । मैं ही महान् हूं, बाकी सब तुच्छ हैं, ऐसा किसे गर्व होता है जो अज्ञानी हो, जो जीवमें बसे हुए अन्तः परमात्मतत्त्वको नहीं निरखता उसे अहंकार होता है । जो गर्व करे सो अज्ञानी है । जो किसी जीवपर क्रोध करे, मारनेका संकल्प बनाये वह अज्ञानी । जो उन बाहरी वस्तुओंके संचयके लिए हृदयमें मायाचार करे, छल कपट बनाये वह अज्ञानी । छल-कपट बना-बनाकर भी सफल नहीं हो पाते । पचासों ऐसे मौके घरमें आते होंगे । अनेक प्रकारसे छल-कपट करते, मगर वह काम वाला नहीं और करीब करीब छल-कपट वाला काम तो बनता ही नहीं । कुछ बनेगा तो बिगड़ जायगा । और कदाचित् थोडा कल्पनामें बन गया तो वहाँ तो बिगाड़ ही किया । जब छल किया, द्वेष किया तो आत्माको हीन बना लिया, पतित बना लिया तो हानि तो तुरन्त हो गई । क्यों किसी बातका छल करना ? मोहका रंग भी इस जीवको बुरी तरह बरबाद करता है । इस वैभवके प्रति, इस धनके प्रति ऐसी तीव्र तृष्णा रहती है कि चित्तमें यह यह निर्णय समाया है कि हम बड़े हैं तो धनके कारण ही तो बड़े हैं, हम सुखी हैं तो धनके कारण ही तो सुखी हैं । मेरे पास खूब धन है । अच्छी कमाई है, धन ही मेरा सब कुछ है, ऐसा मनमें विकट तृष्णाका भाव लगा है तो यह लोभका रंग अनादि निधान पवित्र सबल समृद्ध भगवान आत्मदेवका दर्शन नहीं होने देता । तो कषायोंके रंग कम करना, तत्त्वज्ञानकी ओर प्रयास करना ।

(२३) **आत्मवैभवकी सर्वोपरि समृद्धता**—आत्महितकी साधनाके लिए तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्योछावर कर देना युक्तिसे, गुप्तरूपसे, स्थिरतासे, धीरतासे ज्ञानको ज्ञानकी ओर लाकर ज्ञानमें ज्ञानको प्रतिष्ठित करना ऐसा अलौकिक काम क्षणभरमें भी बन सके तो वह जीव कृतार्थ हो जाता है । इन सब बातोंमें जब उत्साह नहीं जगता तब यह कर्तव्य है कि हम वर्तमान साधु-संतोंके गुणोंका स्मरण करें, इस स्मरणसे फिर उत्साह बन जायगा । फिर मार्गमें अपनी गति बन जायगी । इसके लिए ऋषि संतोंके चारित्र जरूर विज्ञात होना चाहिए । उत्साह जगे, प्रेरणा जगे मोक्षमार्गमें लगनेके लिए । तो हम साधु-संत ऋषि जनोंकी भक्तिका भाव बनायें, ऐसी प्रभुभक्ति, गुरुभक्ति, आत्मभक्तिका यदि हम पौरुष कर सकें तो तो इस विनश्वर जीवनसे हम कोई अविनाशी चीज पानेका लाभ ले लेंगे । मिटना तो है ही सब कुछ । उसके मिटनेकी बात है तो रहने दो, पर बन सके कुछ अमिट काम पानेका तो

http://www.jainkosh.org

उसमें न रुकना चाहिए। लोग भी तो किसी बड़े लाभमें थोड़ा खर्च करना पड़ता है तो करते हैं, तो फिर जहाँ सदाके लिए अलौकिक सुख शान्तिका लाभ मिलना हो वहाँ तो हम तन, मन, धन, वचनको न्योछावर कर डालें तो हमने क्या खोया ? क्या दिया, क्या लिया, क्या गंवाया। एक बहुत बड़ी सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति करो। तो ऐसा जीवन हमारा पवित्र बीते, पाप में जीवन न जाय, सबकी भलाईका भाव बना रहे और अपने ज्ञानस्वभावकी धारणा, उपासना, आराधना बनती चली जाय, ऐसे क्षण जिसके व्यतीत हों वह पुरुष धन्य है, प्रशंसनीय है। करनेका काम क्या है सो समझना चाहिये। अकर्तव्यसे दूर रहें।

(२४) **हेय उपादेयका विवेक**—प्रश्नोत्तररत्नमालिकामें जहाँ पूछा गया कि हे भगवान—उपादेयं किं अर्थात् उपादेय चीज क्या है ? तो कहा—गुरुवचनं अर्थात् जो गुरुओंका वचन है वह उपादेय है। शास्त्रमे, ग्रन्थमें गुरुवचन द्वारा गुरुवोंके दर्शन होते हैं। किसीका दर्शन जब होता है तब उसका अनुभव विचार भी हमारे विचारमें आता कि हम ऐसे हैं। सही दर्शन तो वह है जो गुरु संतोंने पाला है। बताया है, आदेश किया, निर्देश किया इसमें कल्याण है वह उपादेय है, उसे मानकर चलना। फिर पूछा कि—किं हेयं अर्थात् हेय क्या है ? तो अकार्यं अर्थात् जो करने लायक नहीं है सो हेय है। सब लोग जानते हैं कि क्या है हेय ? जैसे कुत्तेको अपने हाथसे आपने रोटीका टुकड़ा खिलाया तो वह कितनी नम्रता आपको दिखाता है। अपनी पूँछ हिलाकर बड़ी नम्रतासे आपके सामने पेश होता है और आपके द्वारा प्राप्त टुकड़ेको कितनी प्रसन्नतासे खाता है, और जब रसोईघरसे वह रोटी उठा ले जाता है तो कितना कायर सा बनकर किसी कोनेमें ले जाकर छिपकर खाता है। देखो उस कुत्तेको किसी मास्टरने सिखाया तो नहीं, पर उसे भी यह विवेक है कि चोरीका काम करने लायक नही है और यह ईमानदारीका काम अच्छा है। तभी तो वह कुत्ता चुराकर लाई हुई रोटीको छिपकर एक कायर सा बनकर खाता है और हाथसे दी हुई रोटीको बड़ी शानसे, बड़ी प्रसन्नतासे खाता है। उसकी समझमें यह बात है कि न्याय-नीतिसे मिले हुए टुकड़ेमें पाप नहीं लगता, और चोरीसे लाई हुई रोटी खानेमें पाप लगता है। तो जो अन्याय है उसे दूर करें, जो अकार्य है सो हेय है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ प्रकारके पापों के त्यागमें आपका समस्त आचरण आ गया। किसीका दिल न दुखावें, किसीका बुरा विचार न करें, अहिंसा बन गई। किसीकी चुगली मत करें, निन्दा मत करें, हितकारी वचन बोलें, सत्य बन गया। किसीकी चीज मत चुरावें, उसको बड़ा दुःख होगा। जिसकी चीज चुराई गई है उसमें हिंसा भी है। सारे पाप हिंसाके कारण हैं। कौन नहीं जानता कि यह चोरी है। कुशील मत करें। बुरी दृष्टि मत बनावें और लालच मत करें। जिसको यह विश्वास हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न हो कि जो धन आता है वह सब पुण्य पापका फल है। चाहे गरीब हो, चाहे धनी हो, जिसको यह विश्वास नहीं वह ही तो बड़े विकल्प मचाकर सोचता है कि मैंने कमाया, मैंने जोड़ा, तो भला बतलाओ उसका मिथ्यात्व भी हटा क्या ? और जहाँ मिथ्यात्व न हटा तो वह महापापसे बरी क्या हो ? परिस्थितियाँ कराती हैं वह बात अलग है, और भीतरमें यदि कुछ ऐसी श्रद्धा बने कि मैं ही पालनहार हूं, मैं ही राखनहार हूं तो उसके आधारपर उसके कैसे खोटे व्यर्थके बिना मूलके विचार उठते हैं, तो ऐसे कुविचारोंका दूर होना और अपने आपके सहज स्वभावकी दृष्टि बनाना।

(२५) रम्य धाम— बड़े-बड़े पुरुष, बड़े-बड़े ऋषि, बड़े-बड़े धनिक लोग सब कुछ त्याग कर, जंगलमें रहकर जिसकी खोज करते हैं, जिसकी छान करते हैं, जहाँ रमना चाहते हैं, समाधिभाव चाहते हैं वह तत्त्व क्या है ? अपना सहज स्वभाव। कोशिश करते हैं। जैसे किसी गरीबको निधि मिल जाय तो अकेलेमें पोटली खोलकर उसे देख देखकर खुश होता है—मेरे पास इतना धन है। यह है, ऐसा है। ऋषिसंतोंको कोई एक अनन्त आनंदकी निधि मिली है तो उसे वे एकान्तमें खोल खोलकर, देख देखकर, दृष्टियोंसे निहार निहार कर प्रसन्न हुआ करते हैं। हालांकि वे सबके बीच भी अपने भीतरकी निगाहकी गठरी खोलकर देखें तो कोई उसमें बाधा नहीं डालता, मगर सबके समागमके बीच दिखती भी तो नहीं है, वह गठरी खुल भी तो नहीं पाती है। सबके पास लाल है, रत्न है, निधि है, पर गाँठमें बँधी है, उस पवित्र तत्त्वको सर्वज्ञसे ही बाँध रखा है, गाँठ खोलकर नहीं देखते हैं और अपनेको गरीब समझते हैं। तो कोई दूसरा जो भी आगे बढ़ा है, प्रभु हुआ है, समर्थ हुआ है, ऋषि बना है वह आत्मा ही तो है। अपने आपमें भी तो साहस बनावें कि हम भी बन सकते, प्रभु हो सकते, सर्वज्ञ हो सकते, निर्दोष हो सकते। शर्त यह है कि परका लगाव न होना चाहिए। अब कोई इसीपर हठ हो जाय कि यह लगाव तो हम छोड़ नहीं सकते और धर्मात्मा बना दो तो यह बात नहीं बनती। क्यों लगाव नहीं छोड़ना चाहते, लगावमें धरा क्या है ? कोई कल्पना है। मान लिया कि मेरा है। अरे वह जीव न आया होता घरमें, दूसरा कोई जीव आया होता तो क्या उससे मोह करते ? मोह करनेकी इसके कुटेव लगी है। कोई निर्णय तो नहीं है कि यह हमारा है, वह तो तुम्हारा माननेका है। चीजकी ओरसे नहीं है। लगाव छूटे, अपने आपके स्वरूपमें आना बने, इसके लिए तो बहुत प्रसन्न होना चाहिए। किसीका लगाव छूट जाय तो वह दुःखी थोड़े ही रहेगा। जिसकी चिन्ता करते उसका तो अपना-अपना उदय है, कर्म है, उसका तो उदयके अनुसार सब बात बनेगा। अनेक घटनायें तो ऐसी हैं कि जब तक कोई घरका बड़ा लगावमें रहता है, बीच-बीचमें बाधायें डालता है अथवा वह समझता है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मैं करता हूं तो अपना खूब काम करता है तब तक घरके बच्चोंका पुण्योदय विकसित नहीं हो पाता। अनेक घटनायें ऐसी देखनेको मिली हैं और लगाव उसने छोड़ा है तो उनका पुण्य विकसित हो जाता है, और इतना तो कमसे कम है ही कि जब तक लगाव रख रहा है तब तक वह समझता है कि मेरेको क्या परवाह, मेरा यह बुड्ढा, मेरा यह बाबा हम लोगोंकी बहुत फिक्र रखता है तो हमें क्या करना ? स्वयं भी पौरुष नहीं करता तो बताओ निजकी हानि करे, दूसरेकी हानि करे, ऐसे मोहमें नफा क्या पा लिया जाता ? सही-सही ढंगसे चलें, ज्ञानप्रकाशमें चलें कषायोंसे हटकर तो आनन्द मानेंगे, कर्म कटेंगे, सुख होगा। उसमें सब भलाई भलाईकी बात होगी। तो दुर्लभ इस जीवनमें आत्माके उद्धारका काम कर लें तो वह तो बुद्धिमानी है और जो मोह मोहमें ही रमकर जीवन गंवाये तो वह सब अपनी बरबादी की ही बात है।

(२६) **शाश्वत स्वरूपके आश्रयका कर्तव्य**— जो कुछ सुनना है वह इस दृष्टिसे सुनना है कि हमको करनेकी बात सुनाई जा रही है। जो कहेंगे वह करनेकी बात है, कर न सकें तो वहाँ धीरज धरें कि अभी हम कर नहीं सक रहे, मगर करनेकी बात यह ही है। अगर संसारके दुःखोंसे सदाके लिए छुटकारा पानेकी अभिलाषा है तो करना यह ही पड़ेगा, उसी विषयमें बोल रहे हैं। और आज क्या, सभी दिन उसी विषयमें बोलेंगे। एक शास्त्र क्या, सभी शास्त्र उसी विषयके लिए हैं, अर्थात् जो आदेश हो रहा है प्रभुका उसपर मैं चलूँ और दुःखोसे सदाके लिए निवृत्त होऊँ। तो यह देखो कि जगतमें दुःख है कि नहीं ? सारा दुःख ही दुःख है। थोड़ी देरको कल्पना करके सुख मान लेते हैं किसी भी संगका, मगर वहाँ तुरंत भी क्लेश है और थोड़ी देर बाद प्रकट क्लेश आ जाता है। कौनसी स्थिति ऐसी है कि जिस स्थितिमें कष्ट नहीं ? केवल एक समाधिकी स्थिति है ऐसी जहाँ कष्ट नहीं। मेरेको जितनी भी परिस्थितियाँ हैं सब कष्टकी परिस्थितियाँ हैं। बचपनसे लेकर वृद्धावस्था तक सर्वत्र कष्ट ही कष्ट है। बच्चेको देखो—उन्हें जो चाहे डाँट दे, जो चाहे भगा दे, पैसे जितने माँगें उतने न दें, फटकार दें, चुप करें, तो वे बच्चे लोग मनमें कष्ट नहीं मानते क्या ? अरे वे बहुत दुःखी होते हैं, वे सोचते हैं कि यदि हम भी ऐसे ही बड़े होते तो ऐसा कष्ट न झेलना पड़ता। अब जितने बड़े हुए वे क्या कष्टमें नहीं हैं ? १७, १८, २० वर्षके हुए तो वहाँ भी कुछ न कुछ विकल्प हो रहे हैं। शादी हो तो वहाँ भी अनेक प्रकारके विकल्प होते, जरा-जरासी बातमें रूठते। यों रात-दिन कष्ट मानते कि नहीं ? कौनसी ऐसी अवस्था है जहाँ कष्ट न हों। कुछ और बड़े हुए तो वहाँ भी अनेक प्रकारकी चिन्तायें आ गईं, जिम्मेदारी आ गई तो वहां भी कष्ट मानते कि नहीं ? एक दृष्टिसे सोचो तो मनुष्य जन्म तो मानो इसलिए पाया था कि

Version 1

सच्चा आनन्द पायें, आत्माकी सच्ची सुध लें और एकदम फैसला करें कि मैं जो हूं, जैसा हूं, सही हूं, वही बनकर रहूंगा।

(२७) विषयविषसे दूर रहनेमें कल्याणका लाभ—भैया ! आये तो इसीलिए थे कि मैं सहजस्वरूपकी उपासनामें जीवन लगाऊँगा, मगर करने क्या लगे ? कहां फँस गए ? कुछ तो जान-बूझकर फंसे कुछ परिस्थितियोंने फंसाया। तो सर्वत्र दुःख ही दुःख है। व्यापार चलता है, बड़ा फायदा होता है, फिर भी वहाँ बड़ा कष्ट मानते हैं, पर वहां समझते नहीं कि मैं कष्टमें हू। विकल्प तो करता है, हँसता है, वहाँ भी क्षोभ तो होता ही है, यह क्या कष्ट नहीं है ? एक तो मीठा विष होता और एक कड़वा विष होता। मीठा विष खाने में उसे बुरा तो नहीं लगता। तो यही सांसारिक सुखोंकी बात है, वे मीठे विष हैं। विकल्प तो होते, आकुलता होती, सुध भूलते, प्रभुकी याद नही रहती, अज्ञानमें बस जाते, यह क्या कष्ट नहीं है ? वेदना आयी वहाँ कष्ट, हानि हुई वहाँ कष्ट, बचपनसे लेकर बुढ़ापा तक कष्ट ही कष्ट देखनेमें आया। वृद्ध हुए तो वहाँ भी कष्ट। शक्ति नहीं है कि अधिक खा सकें, मगर दूसरोंको खूब खाते पीते देखते तो वहाँ वह वृद्ध क्या कष्ट नहीं मानता ? इन्द्रियां काम नहीं करतीं और चाह बड़ी बड़ी हो रही है। तो क्या वह चित्तमें झुलसता नहीं है असमर्थ जानकर। बच्चे लोग उसकी बात नहीं मानते, बल्कि मजाक मानते तो क्या वह बूढ़ा दुःख नहीं मानता ? कौनसी स्थिति है ऐसी जहां आनन्द मिलता हो ? जब यह मनुष्य-जीवन दुःखमय है तो इससे अधिक दुःखमय जीवन तो पशु-पक्षी, कीड़ा-मकोड़ा आदिकका है। उनकी तो न कुछ जैसी दशा है। कहां इज्जत, कहां कीर्ति, कहां वे चैनसे रहते ? कुछ भी नहीं है। तो सारा संसार दुःखमय है। तो पहले चित्तमें यह फैसला बनावें कि संसारमें इसी तरह जन्म मरण करके, मोह रागद्वेष करके जरा खाना-पीना और इन्द्रिय विषयोंमें राजी होकर और दुर्गतियोंमें जन्म ले लेकर रहना है क्या ? या इन झंझटोंसे छूटकर शुद्ध पवित्र बनकर महत्त्व प्रकट करके सदाके लिए शुद्ध स्वच्छ आनन्दमय रहना है। ये दो बातें सामने है। क्या रहना चाहते सो फैसला कर लो। अगर संसारमें रहना चाहते, जन्म मरण भोगना चाहते, आज संयोग हुआ तो हर्ष मानते, वियोग हुआ तो कष्ट मानते। हर समय आकुलता मचायी, अगर यह इष्ट है तो यह तो गाड़ी अनादिकालसे चलती ही आ रही है, वह तो आप कल्पना मूल्यसे खरीद हो रहे हैं। किसीसे पूछना भी नहीं है, धक्का वाली गाड़ी चलती ही रहती है। करते रहते हो, करते जावो मोह रागद्वेष इष्ट अनिष्ट बुद्धि, परको अपना मानना, विषयोंमें प्रीति, देहको यह मैं हूं ऐसा समझना ये सब उपाय इस बातके हैं कि नाना दुर्गतियोंमें जन्म लें, मरण करें और जीवनभर इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, शारीरिक वेदना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

और आशा, तृष्णा, इनके दु:ख भोगते रहें यदि ऐसा ही चित्तमें है तो उसे उपदेश देनेकी जरूरत नहीं। इसमें तो सभी अभ्यस्त हैं ही अनादिसे। एकसे एक बढ़कर गुरु बन रहे हैं, उसे समझानेकी आवश्यकता नहीं तथा अगर यह चित्तमें आ रहा हो कि हम तो निश्चित तौरसे उपाय करते हैं कि जिस किसी भी प्रकार मेरेको मेरेमें ऐसी मौज मिले कि जिससे चलकर मैं सदाके लिए जीवनमुक्त होऊँ। यदि ऐसी अभिलाषा है तो उसका उपाय ऋषि जनोंने बताया है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

(२८) **संसारवेदनाका मूल भ्रम**—मोक्षमार्गके इस प्रसंगमें उसके विपरीत यह समझिये कि हमको यह सकल दु:ख जो संसारमें लगा है तो किस कारण लगा है ? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रके कारण। इन सबको अगर एकमें बांधो तो कहो भ्रम ? जितना दु:ख लगा है वह सब भ्रमसे लगा है। भ्रमके बारेमें गुजराती एक कथानक है ऊँटका। बोलते हैं कि यह तो ऊँटका बँधना है। एक पुरुष २१ ऊँट लिए जा रहा था और बहुत दूर जाना था। रास्तेमें दो तीन जगह ठहरना भी पड़ेगा ऐसा जानकर वह ऊँट वाला ऊँट बांधनेके लिए खूंटे तथा रस्सियाँ साथ ले गया। भूलसे वह २० ही खूँटे तथा रस्सियाँ ले गया था। जब वह रास्तेमें शामको किसी गाँवमें ठहरा तो सभी ऊंटोंको उसने खूंटा गाड़कर रस्सीसे बाँध दिया, इसलिए कि कहीं भग न जावें। अब एक ऊँट बाकी बच गया। उसके बाँधनेके लिए खूँटा तथा रस्सी न थी। सो सभी ऊँट तो आरामसे बैठ गए, पर वह ऊँट जो अभी खूंटेमें बँधा न था वह खड़ा ही रहा। ऊँट वाला उस ऊँठसे कहने लगा—तू भी बैठ जा। तो वह ऊँट मानो बोला—हम नहीं बैठते, हमको पहले इन सब ऊँटोंकी तरह खूंटा गाड़कर बाँधो तब बैठेंगे। तुमने इन सब ऊँटोंका तो स्वागत किया और हमारा अपमान किया। जब वह ऊँट न बैठा तो वह ऊँट वाला सोचने लगा कि यदि यह गायब हो जायगा तो क्या करेंगे ? सो वह गाँवके मुखियाके पास गया, बोला—मुखिया जी, हम बड़ी परेशानीमें हैं, हमारे २० ऊँट तो खूंटोंमें रस्सीसे बँध गए, पर एक ऊँट नहीं बंध सका सो वह बैठता ही नहीं, क्या करें ? तो मुखिया बोला—देखो तुम उसके पास जाकर यों ही झूठ मूठका खूंटा गाड़नेका काम कर दो और फिर झूठ-मूठ ही उसके गलेमें रस्सी बाँधनेका काम कर दो, वह बैठ जायगा। ऐसा ही किया उस ऊँट वालेने, तो उस ऊँटने यह भ्रम कर लिया कि मैं बँध गया और बैठ गया। जब प्रात:काल हुआ तो सभी ऊंटोंके गलेसे उस ऊँट वालेने रस्सियाँ खोलीं, खूंटे उचकाकर उखाड़ लिये तो उसके सभी ऊँट खड़े हो गए। वह एक ऊँट अभी बैठा ही रहा तो फिर वह पुरुष उस मुखियाके पास गया, बोला—मेरे सभी ऊँट तो खड़े हो गए, पर अभी एक ऊँट नहीं खड़ा हुआ सो कैसे क्या करें ? तो उसने उपाय बताया कि देखिये—तुम

उसके पास जाकर झूठ-मूठ ही उसके गलेसे रस्सी खोलनेका तथा झूठ मूठ ही खूँटा उचकाकर उखाड़नेका काम करो तो वह ऊँठ खड़ा हो जायगा। उस ऊँट वालेने आकर वैसी ही झूठ-की क्रियायें कीं तो वह ऊँट झट खड़ा हो गया। तो देखिये वहाँ था क्या ? उस ऊँटको कोरा भ्रम ही तो था। न कोई वहाँ खूँटा था, न कोई रस्सी थी, पर झूठ मूठकी उस तरहकी क्रिया कर देनेपर उसने भ्रम कर लिया कि अब मैं बँध गया और अब मैं छूट गया। बंधनेका भ्रम कर लेनेसे बैठ गया और छूटनेका भ्रम कर लेनेसे खड़ा हो गया। वहाँ था कुछ नहीं, केवल भ्रम था। भ्रमसे ही उस ऊँटका बंधना और छूटना हुआ, बैठना और खड़ा होना हुआ, इसी तरह भ्रमसे ही हम आपका बधना और छूटना हो रहा है। जैसे वह ऊंट बन्धनसे राजी था—ऐसा खूंटा मिले, ऐसी रस्सी मिले तब मैं ठीक कहलाऊंगा, तब मैं काम करूंगा बैठनेका। ऐसे ही यह मनुष्य भी सोचता है दूसरोंको देख-देखकर कि मेरेको अगर ऐसा घरका फसना मिले, ऐसा परिवारका बंधना मिले तो मेरा मौज है, नहीं तो मेरेको मौज नहीं, तो ऐसे ही भ्रमसे हम दुःखी होते, भ्रम मिट जाय तो हमारा दुःख मिट जाय, सर्वत्र आप भ्रमका ही कष्ट पा रहें हैं यों समझिये।

(२६) भ्रमका परिणाम कष्टका भोग—

भैया ! लगता है ऐसा कि भ्रमकी क्या बात है ? घर भी तो अच्छा है, खेती होती है, काम अच्छा चल रहा है, खूब धन आ रहा है, सब मौज है, काम अच्छा चल रहा है, लोग सोचते हैं ऐसा मगर हम तो आत्महितकी दृष्टिसे कह रहे हैं कि परिस्थितिमें करना पड़े तो करें मगर श्रद्धामें तो यह लाना पड़ेगा कि मेरे आत्माकी भलाई तो मेरे भीतरी ज्ञान-प्रकाशसे है और तरह नहीं है, अन्यथा बताओ—रोज एक किलो खा खाकर समय व्यतीत होता, दूसरा दिन होता फिर वही एक किलो चाहते। मरनेके बाद वहाँ न जाने क्या बन गए, बैल बन गए अथवा हाथी बन गए तो फिर वहाँ क्या हाल होगा ? फिर तो दसों बीसों किलो खानेकी जरूरत पड़ेगी। इतनेसे कममें तो काम न चलेगा। अगर एक जन्म मरणकी परिपाटी ही पसंद है तो फिर खूब रागद्वेषादि करते रहो, और यदि इस जन्म मरणसे छूटना है तो उसका उपाय है सम्यग्ज्ञान। देखो नई बात यहाँ हम आप सबके लिए कुछ नहीं है, सब पुरानी गुजरी बात है। जो कुछ मिलता है खाना पीना रूपया पैसा भोग सामग्री आदि वे सब कय (बमन) की हुई हैं, जूठी हैं। जैसे कोई किसी चीजको खाकर उसका कय (बमन) कर दे तो उसे कोई फिर खाता है क्या ? अरे खानेकी बात तो दूर रहो, उसे कोई फिर छूना भी नहीं चाहता। तो इसी तरह हम आपने ये सब चीजें भव भवमें खाया और भोगा। कोई ग्राह्य परमाणु नहीं बचा जिसे स्कन्धरूपमें खाया न हो, भोगा न हो। तो अनेक बार भोगी हुई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चीजें वे सब वमनरूप ही तो हैं। उसीको यदि रोज-रोज खाते हैं तो भाई घरमें रहते हुए परिस्थितिवश जो बनता है ठीक है, मगर सच्चे ज्ञानमें तो जरा भी कमी न करना चाहिए। वह सम्यग्ज्ञानकी बात जब हमारी सही बने बन जायगी। मगर श्रद्धा और ज्ञान तो हमारा बिल्कुल सही रहना ही चाहिए तो भ्रम छूटता है। भ्रम लगा है चार बातोंसे, एक तो अहंकार—जो मैं नहीं हूं उसे मानना कि मैं हूँ वह भ्रम है। जो अनात्माको आत्मा मानेगा उसको तो कष्ट आयेंगे ही। जो मेरी चीज नहीं उसे श्रद्धामें मानें कि यह मेरी चीज है तो उसका फल तो तकलीफ है। फायदा कुछ नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व के अलावा जो कुछ भी है वह सब पर है। उससे मेरे आत्माका रंच भी सम्बंध नहीं है, उसे मानें कि यह मैं हूं, यह मेरा है, तो उसका तो फल कष्ट ही है।

(३०) **परिश्रमका प्रतिकार विश्राम**—देखो जब शरीरसे बहुत बड़ा श्रम कर डालते हैं तो उस थकानको मेटनेके लिए ढीले-ढाले शरीरसे लोटकर आराम पाते हैं और उस आराम के बाद फिर तगड़े हो जाते हैं, यह बात बोलते हैं ना। खूब काम करते-करते थक गए तो उसके बाद शरीरको ढीला करके लेट गए, शरीरको कड़ा करके कोई नहीं लेटता और कड़ा करके कोई लेटे तो थकान नहीं मिटती। सारा शरीर ढीला छोड़कर सीधा लेटे, करवटसे लेटे, बल्कि ऐसे लेटें कि हाथ पैर हिल-डुल जायें, बिल्कुल ढीला ढाला शरीर करके आराम करते हैं तो फिर ६-६ घटे बाद तगड़े होकर अपना काम कर सकते हैं। तो शरीर जब थक जाय तो आराम लेते कि नहीं। ऐसी ही बात यहाँ देखें कि जब मन थक जाता है सोच-सोच कर, विकल्प कर-करके, मोह कर-करके, लड़ लड़कर तो आपने उस थकानको मेटनेका कोई आराम समझा हो तो बताओ वह थकान कैसे मिटे? शरीरकी थकान तो ढीले-ढाले पड़कर आरामसे मिटती, लेकिन दिलमें जो थकान बन गई विकल्प करके, मोह करके, आकुलित होकर, शंकायें करके क्या होगा? यह हो रहा कुछ नुक्सान, यह नुक्सान पचासों विकल्प लगा-लगाकर जो दिलकी थकान बन जाती है उस थकानको मिटानेका कोई उपाय सोचा क्या? उस थकानको मिटानेका सच्चा उपाय है आत्मप्रकाश, आत्मज्ञान। केवल दृष्टिमें आत्मस्वरूप ही रहे तो वह थकान मिट सकती है। परेशान शब्दका अर्थ क्या है? पर और ईशान। ईशान कहते हैं मालिकको, और जहाँ परको मालिक बनाया अथवा जहाँ परका मालिक बना तो इसी भावको परेशान कहते हैं। अब खूब सोच लो। जो-जो लोग परेशानी का अनुभव कर रहे उनके चित्तमें यह बात बसी है कि मैं इनका मालिक हूं अथवा यह मेरा मालिक है। मैं इनका जिम्मेदार हूं। ऐसी कुछ भी बात सोचता है तो वह परेशान है और जैसा स्वतंत्र स्वरूप है अपना परका ऐसा स्वतंत्र स्वरूप माने तो वहाँ परेशानी किस बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की ? एक उदाहरणसे इसे समझ लो—कोई सोचे कि मैं बहुत कमाने वाला हूं तो उसका सोचना भ्रम है। उस धनको जिन जिनने भोगा, जिन जिनके भोगनेमें वह धन काम आया क्या उनके पुण्यका कुछ भी उदय नहीं है ? अरे उनके पुण्यका उदय आया तभी तो आपके द्वारा धनकी खूब कमाई हो रही है। आप उनका पालन-पोषण नहीं कर रहे, बल्कि आपको तो उनका नौकर बनना पड़ रहा है। आप उस पर अहंकार क्यों करते ? तो आप तो एक मशीनकी तरह हैं। जिन जिनके भोगनेमें वह धन काम आयगा उनके आरामके लिए आप मशीन हैं। मशीनको कहीं कमाते देखा ? क्योंकि वह तो एक दूसरोंके उपभोगके लिए चीज बन रही है। अहंकार क्या करना ? जिसका जैसा भाग्य है उसे वैसा होगा।

(३१) **निर्भ्रान्त होकर परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्यके निभावका विवेक**—आप इस समय गृहस्थीमें हैं तो आपकी जिम्मेदारी है वहाँ आप अपनी ड्यूटी बनायें इतना ही मात्र तो कार्य है, उसके फलके बारेमें ऐसा कुछ न विचारें और तृष्णाको बाँधकर न रखे, सुगमतासे जो हो गया सो ठीक है। जिन जिनका जैसा भाग्य है उनको वैसी लक्ष्मी आयगी इसमें बंधनकी क्या बात है ? जितना कष्ट है वह सब भ्रमका कष्ट है। भ्रम लगा रखा, कल्पनायें बना रखीं, अपने आत्माकी सुध भूल रहे हैं। तो कुछ तो जीवनको मोड़ें, कुछ सम्यग्ज्ञानमें अपना समय लगावें, कुछ स्वाध्यायमें, कुछ चिन्तनमें अपने आपको जुटावें और कभी यह मत समझें कि हम पर कोई क्लेश आया। क्लेश तो दुनियामें है ही नहीं। मानते हैं तो क्लेश है और कोई शारीरिक क्लेश भी आ जाय कि जिसको मानना ही पड़ता हो तो इतना बल बनायें कि उसे समतासे सह सकें। आया है तो परवस्तु है, उसका ऐसा परिणमन है। मैं उसका कर क्या सकता हूं। धैर्य बनावें। कभी अपनेमें विपत्तिका अनुभव न करें। जो स्थिति हो सो मंजूर। जैसे उदयाधीन काम हो सो स्वीकार है, मेरा क्या बिगड़ता है ? मेरा बिगाड़ है तो अपने स्वरूपको भूलनेमें, भ्रम करनेमें मेरा बिगाड़ है। उसका कहीं इलाज नहीं है। किसीको भ्रमका रोग हो और इलाज करे कोई दूसरा तो क्या उससे उस का भ्रम मिट जायगा ? नहीं मिट सकता। अरे जिस विधिसे भ्रम मिटता है वह इलाज किया जायगा तो भ्रम मिट सकता है, किसी दूसरे उपायसे भ्रमका रोग दूर नहीं सकता।

(३२) **उदाहरणपूर्वक परविविक्तताका दिग्दर्शन**—जैसे एक शंख होता है, जिसे लोग बजाते हैं, तो उस शंखके अंदर एक कीड़ा होता है उसका उस ऊपर वाले खोलसे एक बाल बराबर सम्बंध रहता है। वह कीड़ा उस ऊपर वाले खोलसे अपना मुख बाहर निकाल लेता है। उसका सारा ढाँचा बाहर आ जाता है, पर उसका कुछ न कुछ सम्बंध बना रहता है। वह कीड़ा मिट्टी वगैरह जो कुछ खाता है उसीसे वह भी पुष्ट होता रहता है और उसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऊपरका पोल भी पुष्ट होता रहता है। देखिये कैसी विचित्रता है कि हम आपका शरीर तो हड्डियोंके ऊपर लदा है, पर उस कीड़ेके शरीरके ऊपर हड्डियों जैसा कड़ा खोल लदा रहता है। तो देखिये वह शंख भूरी, मुल्तानी आदि अनेक प्रकारकी मिट्टी खाता है फिर भी उसके ऊपरका वह खोल उन मिट्टियोंरूप नहीं बन जाता। वह सफेद शंख जब कभी काला बनना होता है तो क्या उसे कोई रोक सकता है ? नहीं, बिल्कुल भिन्न बात है। तो ऐसी ही इस आत्मा और शरीरकी बात है। इस आत्माकी अन्य चीजोंकी भी बात है। मैं कुछ सोचूं तो उसके मुताबिक हो जाता है क्या बाहरमें ? मैं विकल्प करूं तो उसका बंधन और हो जाता है। बाहरमें मेरे सोचनेसे बनता कुछ नहीं, विकल्प करें तो बन्धन और बन जाता है। दिन भर काम करते, मनका भी काम करते, वचनका भी काम करते, शरीरका भी काम करते, उस सब थकानको मेटनेका एक घंटा समय तो रखना ही चाहिए। वह थकान मिटेगी ज्ञान प्रकाशमें। स्वाध्याय करें, तत्त्वचर्चा करें, तत्त्वचिन्तन करें। मरणसमय सभीका आ ही रहा है। तो इन क्षणोंको अमूल्य समझें। प्रमादमें न गंवायें, गप्पोंमें न गवायें, उसका सदुपयोग बनायें। कोई ग्रन्थ ले लें, उसे बाँचने लगें। कोई कठिन न लगेगा। सब सरल बात हो जायगी। तो इन सब कष्टोंको, थकानोंको दूर करनेके लिए हमें सम्यग्ज्ञानका उपाय बनाना चाहिए। इन उपायोंके बनाये बिना हम कभी भी संकट मुक्त हो नहीं सकते।

(३३) **परभावविविक्त निज एकत्वधाममें परमविश्रामका सुयोग**—मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसा अनुभव करनेके लिए विविक्तता रूपसे परिचय करना चाहिए। यह जीव परमार्थतः अनादिकालसे समस्त परसे विविक्त है। यह परिवार है सो मैं हूं, यह देह है सो मैं हूं, जो भीतरमें विचार उठते हैं सो मैं हूं, जो मैं कर रहा हूं सो सही कर रहा हूं, ऐसा ही करनेका मेरा काम है, इस तरह परतत्त्वोंमें यह लिपटा लिपटा चला आया है। तो परतत्त्वोंसे हटनेकी विधिका भी प्रयोग करना चाहिये। और वह पद्धति मानो इस प्रकार है कि जैसे कोई पुरुष विलायतमें गया, वह जब स्वदेश आना चाहता है, मानो आपके शोलापुर ही वह आना चाहता है। वह जब वहाँसे टिकट कटाकर चलता है तो कुली लोग अथवा मजदूर लोग अथवा कोई मित्र जन उससे पूछते हैं कि भाई आप कहा जायेंगे ? तो वह कहता है कि हम इंडिया (भारत) जायेंगे। जब वह वहाँसे चलकर भारतके किसी हवाई अड्डे अथवा बन्दरगाह पर आता है, वहाँ कोई पूछता है कि आप कहाँ जायेंगे ? तो वह कहता है। कि हम महाराष्ट्र जायेंगे। जब महाराष्ट्रके किनारे वह पहुंचता है तो वहाँ कोई पूछता कि आप कहाँ जायेंगे ? तो वह उत्तर देता कि हम शोलापुर जायेंगे। जब शोलापुर स्टेशनपर आ गया तो वहाँ किसी रिक्शे वालेने पूछा आप कहाँ जायेंगे ? तो वह उत्तर देता कि हम फलाने मोहल्ले

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में जायेंगे। फिर उस मौहल्लेमें वह जाकर कहता कि हम तो इतने नम्बरके मकानमें जायेंगे। जब उस मकानमें वह पहुंचता है तो अपने विश्रामके कमरेमें पहुंच कर बड़े चैनसे विश्राम करता है। तो ऐसे ही हम आपका यह उपयोग अपने निज विश्रामधामसे हटकर बहुत बाहर पहुंच गया है। वहाँ उसे कहीं शान्ति तो मिलती नहीं किन्तु सुख मौज ऐश आराम विभव ये सब चीजें मिलीं, इनमें मस्त रहा इसमें भी शान्ति न पाई अब सुध आयी कि चलो अपने देश चलना है, अपने निज धाममें चलना है। तो जब बहुत दूर तक यह पहुंचा हुआ था। यहाँ तक कि जीवने प्रकट भिन्न पदार्थोंमें भी आत्मीयता अंगीकार कर डाला था, यह घर है सो मैं हूं। घरकी एक ईंट भी खिसक जाय, टूट जाय, बीचमें से निकल जाय तो ऐसा अनुभव किया कि मानो दिलमें से ही कुछ निकल गया। इतना अजीव पदार्थोंके साथ लपेट बनाया। अब जब बाह्य भौतिकसे हटता है तो मानो कोई पूछे यहांसे हटकर कहाँ जा रहे? उत्तर–बाह्य जीव तत्त्वके प्रसंगमें, जीव तत्त्वसे सम्बंध बनानेके लिये। अजीव पदार्थोंसे नहीं, भिन्न क्षेत्रोंमें रहने वाले पदार्थोंसे नहीं। वहाँसे हटकर आये जीव पदार्थपर, तो परिवारमें अटका, यहाँसे हटकर कहाँ जावे? इन भिन्न क्षेत्र वाले परजीवोंसे हटकर कहाँ जा रहे हो? हम अपने एक क्षेत्रावगाही पदार्थोंमें जा रहे हैं। इसमें यह देह तक आया, देहमें अटका। यहाँसे भी हटकर जायगा, कहाँ जायगा? इन प्रकट दृश्यमान एक क्षेत्रावगाही परतत्त्वोंसे हटकर आया एक कर्म देशमें कार्माण वर्गणामें, उसके फलको, उसके प्रभावको इसने अंगीकार किया था, कर्मक्षेत्रसे भी हटकर आता है तो उस योगकी विपरिणतिपर मानो आया। भावोंपर, क्रोध, मान, माया लोभमें मानो आया, यहाँसे भी हटकर आता है विचार-तरंगों तक। विकारमें और इस विचार में इतना अन्तर है कि विकारमें तो गुणकी अनुरूपता रंच भी नहीं है और विचारसे कुछ गुण की अनुरूपता है, और ऐसा होनेका कारण यह है कि विकार तो होता है कर्मोदयसे और विचार होता है उदय एवं क्षयोपशमसे। ज्ञानावरणका क्षयोपशम पाया, इतने विचार बनने लगे, लेकिन वे विचार भी अनात्मतत्त्व हैं, वहाँसे हटकर पहुंचा तो अन्तर्जल्पमें, वहांसे भी हटकर पहुंचा तो कहां? निश्चयके विषयभूत अखण्ड तत्त्वकी पात्रता दिलाने वाले विचारपर, और वहांसे हटकर अपने निज धाम चैतन्यस्वभाव उसमें यह उपयोग पहुंचा है, वहां विश्राम लेता है। तो कितना दूर-दूर यह उपयोग हटा था और कितनी मूढ़तायें कर रहा था, दुःखी हो रहा था, यह बात समझमें आती है। जब हम विविक्तताके क्षेत्रका अध्ययन करते हैं—इससे भी निराला, इससे भी निराला।

(३४) **मोह अपराधका भयंकर परिणाम**—अब तक जो कष्ट उठाया वह सब अपनी मूढ़ताके कारण उठाया। मूढ़ता कहो या मोह कहो, एक ही अर्थ है, पर लोग मोह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को तो गाली नहीं समझते और मूढ़ता शब्दको गाली समझते हैं। अन्तर है क्या ? मुह् धातुसे मोह बनता, मुह् धातुसे मूढ़ता बनता। शायद यह अन्तर मान रखा हो कि मोहकी तो मुह् धातुसे सीधी भाववाचक निष्पत्ति हुई और मूढ़ता शब्दमें मुंह धातुसे संज्ञा बनाया, फिर भाववाचक प्रत्यय लगा है, पर यह जीव इतना कहाँ समझदार है और इसमें अन्तर ही क्या है ? मूढ़ताको, बेवकूफी की। तो जो बेवकूफी करे, मूढ़ता करे उसको दण्ड मिलना प्राकृतिक बात है। बेवकूफ होकर फजीहत ढूँढ़नेकी, विपत्ति ढूंढ़नेकी आवश्यकता नही रहती बेवकूफके सिर पर विपत्ति लहराती ही रहती है। यह बेवकूफी है परतत्त्वोंमें आत्मीयताका अंगीकार करना, यह मैं हूं। सुननेमें अथवा कुछ चर्चामें एक आश्चर्य सा होता है कि यदि किसी जीवने इतनी बात मान ली कि देह मैं हूं तो यह कोई बड़ा गुनाह तो नहीं है। किसी आदमीको पीटा नहीं, किसीकी चोरी नहीं की, किसीको सताया नहीं, अकेला बैठा है, देह को मैं मान रहा है, इसमें कौनसा अत्याचार किया, गुनाह किया, जिसका कि इतना बड़ा दण्ड दिया जा रहा है कि पशु बने, कीड़ा-मकोड़ा बने, पेड़-पौधा बने, ऐसा कौनसा बड़ा गुनाह हो गया ? केवल देहमें आत्मबुद्धि कर ली। ऐसा मनमें प्रश्न हो सकता है। किन्तु वस्तुस्वरूपकी ओरसे देखो तो यह सबसे बड़ा गुनाह है, परको आपा मान लेना यह ही समस्त पापोंकी जड़ है और साक्षात् भी यह अन्याय है कि तुम परकी सत्ता ही नहीं रहने देते अपनी कल्पनामें यह देह यह स्कंध भी सत् है, इतना भी मानना इसको बरदास्त नहीं हो रहा और इतना पापबुद्धिमें आ गए कि इन अनन्तानन्त परमाणुओंकी सत्ता मिटाने पर उतारू हो गए। यह कम गुनाह है क्या ? अनन्तानन्त आहार वर्गणाओंकी सत्ता मिटा देना विकल्पमें, यह तो महापाप हुआ। इस देहको माना कि मैं हूं। इसका अर्थ है कि देह नहीं है इसकी सत्ता ही नहीं है। यह तो मैं हूं, तो परपदार्थके सत्त्वका घात करना, सारे विश्व की हिंसा करना अर्थात् जगतमें जितने पदार्थ हैं सब पदार्थोंकी सत्ताका लोप कर देना यह कितना बड़ा भारी अपराध कहला सकता है ? जिसने वस्तुकी स्वतंत्रता स्वीकार नहीं की, प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है, एकका दूसरेमें अत्यन्ताभाव है, एक दूसरे रूप न कभी हो सका न कभी हो सकेगा। यों समस्त पदार्थ स्वतंत्र सत्ता रखते हैं, इस तथ्यको न मानकर और सब रूप अपने को कर डाले तो इसको तो महान क्रोध कहा कि सबका विनाश कर दिया। कर नहीं सकता विनाश, पर कल्पनामें तो सबको मिटा दिया और इतना गर्वमें आया यह कि अन्य कुछ चीज नहीं। मानो इसका अस्तित्व ही नहीं, सब मैं हूं। तीव्र जो कषाय रखे और उससे भी तीव्र पाप है अज्ञान तो इतना दण्ड पायगा ही।

(३५) मोह राग द्वेषके अनर्थका उदाहरण—मोह रागद्वेषके अनर्थकी एक घटना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृष्टान्तमें दी गई है कि जंगलमें हाथियोंके पकड़नेकी विधि क्या है कि एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदा उस गड्ढेपर बाँसकी पतली पतली पंचें बिछा दीं, उसपर जमीन जैसे रंगका कागज बिछा दिया, उसके ऊपर कुछ हथिनी जैसे रूप ढाँचेमें झूठी हथिनी बना दी और करीब ५० हाथ दूरपर एक ऐसा झूठा हाथी बनाया कि जो मानो इस हथिनीकी ओर दौड़ता हुआ सा दीखे। बस इतना दृश्य बनाना है शिकारीको और अपने घर आरामसे बैठता है। जंगलका हाथी झूठी हथिनीको देखकर उस गड्ढेपर आता है और आनेकी जल्दी भी मचाता है, क्योंकि वह देख रहा है कि दूसरा हाथी आ रहा है। मैं पहिले पहुंचूं। वह गड्ढेपर आता है, बाँस टूट जाते हैं और वह गड्ढेमें गिर जाता है। कई दिन तक उस हाथीको भूखा रखते हैं, फिर रास्ता बनाकर उस कमजोर हाथीको निकाल लेते हैं और अंकुशसे वशमें रखते हैं। तो उस हाथीने विपत्ति पायी उसका मूल कारण है रागद्वेष मोह। उस हाथीको अज्ञान था जिससे वह यह न पहिचान सका कि यह झूठी हथिनी है, राग था उस हथिनीसे और द्वेष था उस हाथीसे कि यह हाथी उसका विषय न बिगाड़े। यों मोह राग द्वेषसे आक्रान्त होकर हाथी गड्ढेमें गिर पड़ा। ऐसे ही संसारके जीव जितना भी विपत्तिमें पड़े हैं उसका कारण है मोह राग द्वेष अज्ञान। यह विषय सुख भयानक है, मायाजाल है, आत्माके हितके हेतुभूत नहीं है। अकल्याणमय है। परपदार्थ, इनके अनुभवनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। सही ज्ञान नहीं है, अज्ञान बसा है, विषयोंके प्रति राग लगा है और उन विषयोंमें जो बाधा डालने वाले हैं उनसे द्वेष लगा है। विषयोंमें बाधा डालने वाले दो तरहके माने गए हैं—एक तो वह जो इस विषयको चाहता हो जिस विषयको यह चाहता है, दूसरा वह जो इन विषयोंको भंग करनेमें विघ्न करता हो। तो मोह रागद्वेष इन तीनोंके वश होकर प्राणी दुःखी हो रहा है।

(३६) **विविक्त एकत्वधामके परिचयका प्रसाद**—इस संसारी जीवको अपने विविक्तपनेका परिचय हो जाय कि यह विषय प्रकट भिन्न पदार्थ है। रूप, रस, गंध, स्पर्शमय पुद्गल है, अचेतन है, जड़ है, इसे मैं न करता हूं, न भोगता हूं, इससे निराला हूं और जिन इन्द्रियोंके द्वारा इन विषयोंको अनुभवते हैं ये द्रव्येन्द्रिय भी सब पुद्गल हैं। मैं तो इनसे निराला ज्ञानस्वरूप हूं। जिन विषयोंको हम भोगते हैं ये विषय आफत हैं, जिस विचारके द्वारा हम भोगते हैं ये ज्ञानके खण्ड-खण्ड हैं। यह मैं अपने ज्ञानस्वभावके खण्ड-खण्ड बनाकर अपना ही विनाश कर रहा हूं। मेरा स्वरूप तो अखण्ड है, सर्वज्ञता स्वरूप है जो विविक्तता का परिचय करता है, वह विषयभोगोंसे विमुख हो जाता है, विचारोंसे विमुख हो जाता है और अपने विशुद्ध ज्ञानस्वभावमें उपयुक्त हो जाता है। यों परसे विविक्त मात्र निज स्वभाव मे तन्मय आत्मतत्त्वको अंगीकार करता कि मैं यह हूं ज्ञानमात्र। जो काम अन्य उपायसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सफल नहीं हो सकते वे सारे काम इस परम उपेक्षा भावसे सिद्ध हो जाते हैं और सिद्धि वहाँ कहलाती है जहाँ इच्छा नहीं रहती। ज्ञानको कल्पवृक्ष कहा है। यह आत्मा कल्पवृक्ष है। जो चाहे सो इससे प्राप्त कर लो। विकार चाहें तो विकार प्राप्त कर लें, अविकार दशा चाहें तो अविकार दशा पा लें। अब उनके व्यामोह है जो इन कल्पवृक्षोंसे खलके टुकड़ोंकी भाँति विकार स्थितिको ही चाहते हैं। अद्भुत आनन्द, परम आनन्द अपने अविकार ज्ञानस्वरूपके अनुभवमें है। मनुष्यगतिमें मानकषाय प्रबल होती है। भले ही दुनियाके लोगोंको ऐसा दिखता है कि मनुष्योंमें लोभ कषाय बहुत चल रही है, लोभकी प्रबलता देवोंमें है, मनुष्योंमें मानकी प्रबलता है। जो कुछ ये मनुष्य करते हैं वह मानके लिए करते हैं। धन क्यों कमाते हैं? इसलिए कि मैं दुनियामें सबसे अच्छा धनी कहलाऊं। केवल इस भावनाकी पूर्तिके लिए ही अथक परिश्रम करते हैं। घर बसाते, जो भी उद्यम करते, एक अपनी मान पुष्टिके लिए करते हैं। तो यह मान धूलमें मिल जाय, इसको चूर कर दिया जाय ज्ञानबलसे, प्रयोगबलसे, उस प्रकारके आचरणसे तो यह भी एक इतनी बड़ी सफलता हो गई कि जिस स्थितिमें रहकर हम समरसपूर्ण इस अंतस्तत्त्वका अनुभव कर सकें।

(३७) **ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वको समझनेके लिये अकिञ्चनत्वका प्रतिबोध**—अपनेको समझना है कि मैं ज्ञानमात्र हूं, एतदर्थ पहिले समझ लीजिए कि मैं अकिञ्चन हूं। किञ्चन किसे कहते हैं? कुछ, कुछ किसे कहते? जो पुष्ट नहीं, जो सारभूत नहीं उसका नाम है कुछ। कुछ पाया, कुछ देखा, जहाँ तृप्ति नहीं होती, जहां पूर्णता नहीं आती, जहां समृद्धिका अनुभव नहीं होता उसके संगको कहते हैं कुछ। मैं कुछ नहीं हूं। मैं गड़बड़ तत्त्व नहीं हूं। मैं तो अपने आपमें अपने ही ऐश्वर्यसे सम्पन्न हूं। ज्ञानसिवाय मेरेमें और कुछ नहीं है। किसी भी अन्यका प्रवेश नहीं है। जो कुछको चाहता है, जो कुछके साथ लगाव रखता है उसे वह कुछ भी नहीं मिलता और उल्टी ऐसी चीज प्राप्त होती है कि जिससे उसे घृणा हो जाती है। कुछके लगावमें विडम्बना बनती है। कुछ भी नहीं मिलता और विडम्बना बन जाती है। यह सब कुछ ही तो है, दृश्यमान संग परिग्रह वैभव यह कुछ ही तो कहलाता है। इसका कोई राग करे, मोह करे तो इसपर तो अधिकार कुछ हैं नहीं कि इसको हम अपने साथ ही रख सकें, और इतनी विडम्बना बन जाती है। दुर्गतियोंमें परिभ्रमण होता है। तो मैं कुछ नहीं हूँ, अकिञ्चन हूं। कुछकी चाह न करें। एक सेठकी हजामत बनायी नाईने। तो जब वह नाई छुरा लावे गलेके पास, यहाँ भी तो बाल हैं। तो उसे यह शंका हो गई कि यह छुरा गले तक ले आता है, इसके हाथमें ही तो मेरी जान है। अगर इसने जरा भी छुरा फेर दिया तो मेरी जान गई। हालांकि नाईपर कोई ऐसा सन्देह नहीं करता। नाईके ऊपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो लोगोंको इतना विश्वास रहता है जितना कि गुरुवोंपर भी नहीं रहता। नाईको तो लोग अपना गला बड़े विश्वासके साथ सौंप देते हैं। कोई भी उनपर अविश्वास नहीं करता। परन्तु उस सेठको नाईपर यह संदेह हो गया कि कहीं यह मार न दे। तो वह कहने लगा—खवास जी, बड़ी अच्छी तरह हमारी हजामत बनाना, तुमको हम कुछ इनाम देंगे। उसने अच्छी तरह हजामत बना दी। अब इनाम देनेका समय आया तो उसने अठन्नी दी। एक आनेमें तो हजामत बनती थी, पर उसे ८ आने दिए, तो नाई कहने लगा—मैं यह अठन्नी न लूंगा, मैं तो कुछ लूंगा। रुपया देने लगा तो उसे भी लेनेसे इन्कार कर दिया, अशर्फी देने लगा तो उसे भी मना कर दिया और इस हठमें आ गया कि मैं तो कुछ ही लूंगा। सेठ परेशान हो गया, उसे क्या दे दे ? उसे प्यास लगी तो एक आलेमें दूधका गिलास रखा था। सेठ बोला—नाई जी जरा वह गिलास उठा देना, ज्यों ही उठाया और उसे देखा तो उस दूधमें कोई चीज पड़ी हुई थी, समझमें न आ रही थी तो वह झट बोल उठा—अरे सेठ जी इसमें तो कुछ पड़ा है।···क्या कुछ पड़ा है ?···हां कुछ पड़ा है ?····तो तू उसे उठा ले, क्योंकि तू कुछ ही तो चाहता था। लो उस नाईको कुछ की हठमें क्या मिला ?····कोयला। तो ऐसे ही इन समस्त संसारी जीवोंको कुछ की हठमें क्या मिलता है ?····पाप, विडम्बना, पश्चात्ताप, क्लेश। इस जगतका कोई भी पदार्थ हठके योग्य नहीं है। सब पदार्थोंको कहो कि तुम अपनी सत्तामें रहो, तुम्हारे हाथ दूरसे ही जोड़ रहे। तुम अपनी सत्ताका अनुभव करो, तुम भी ठीक रहो, हम भी ठीक रहें।

(३८) **समस्त अनात्मतत्त्वोंसे विविक्त ज्ञानमात्र निजस्वरूपके अनुभवकी संगीति**—यह जीव जब समस्त अनात्मतत्त्वोंसे विविक्त अपने स्वरूपपर आता है तो यहाँ उसे यह अनुभव होता है कि मैं ज्ञानमात्र हूं। तो कुछ अन्तर्दृष्टि करके भीतर निहारने चले, इन्द्रियका व्यापार बन्द करके भीतर परखने चले तो वहाँ न रूप मिलेगा, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न कोई टुकड़ा है। वह तो एक अमूर्त पदार्थ है। मगर सुसम्वेदन गम्य बात यह है कि वह ज्ञानस्वरूप है। संसारके समस्त द्रव्योंसे विलक्षण वस्तु है। जगतके समस्त पदार्थोंका सम्राट है यह पदार्थ। यह न हो तो और की सत्ताका भी क्या मतलब ? सत्ताका भी कैसे प्रकाश हो कि और भी चीज है अथवा यह बन ही नहीं सकता यदि यह आत्मतत्त्व न हो। कोई कहे कि जगतमें केवल ५ पदार्थ मान लो। आफत न मचाओ जीव मानकर। केवल पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये ही ५ मान लो, जीव नामक कुछ नहीं है। ५ हैं और जीव ही न हो केवल तो पहले यह बताओ कि इस पुद्गलका यह रूप आयगा कैसे ? यह चौकी कैसे बनी जिसपर आप पुस्तक रखे हैं। अगर जीव न हो तो यह चौकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनेगी कैसे ? ये दृश्यमान कोई पिण्ड बनेंगे कैसे ? ये पत्थर मिट्टी, कंकड़, धूल वगैरह हैं और कहो कि ये भी कुछ नहीं हैं तो पुद्गल ही कुछ न रहा। यह बनी ही इस प्रकार कि जीवका सम्बन्ध हुआ और ये आहार वर्गणायें इस रूपमें स्पष्ट हुई, चीज बन गई, नष्ट हुई तो सत्ता जानी, न हो तो पुद्गलका यह रूप कैसे बने ? फिर काल द्रव्य कैसे परिणमाये ? धर्म अधर्मकी बात ही क्या ? एक जीव तत्त्वके न रहनेपर या न मानने पर सभीका अस्तित्व अप्रतिभात व अप्रयोजन रहा। तो जीव है, जीवमें भी सारभूत क्या है ? जीवत्व। अन्य सब कुछ न रहे मात्र ज्ञायकत्व हो इसे कहते हैं समयसार। समय मायने समस्त द्रव्य। उनमें जो सारभूत हो उसे कहते हैं समयसार। कौन ? जीव पदार्थ। अब जीव पदार्थमें भी जो सारभूत हो उसे कहते हैं समयसार। जो भी पहिचानमें आये ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द शक्ति, फिर उनमें भी जो सार लगे वह कहा जायगा समयसार। सार सार, ज्यों ज्यों अन्दरमें घुसते जायें त्यों त्यों सार-सार मालूम होगा। अनेक समान हो तो सबका लोप हो जाता है एक शेष रहता है। व्याकरणमें भी जब किसी शब्दको बहुवचनमें रूप रख देते हैं तो उससे पहले प्रकृति अनेक थी। बहुवचनका प्रत्यय लगनेपर एक एक प्रकृति रहती है। शेषका लोप हो जाता है। तो यह समयसार जो अन्तमें सारभूत दीखा, जिसके आगे कल्पना नहीं चलती, जो कल्पनासे भी परे है वह है ज्ञानमात्र एकत्वमय आत्मस्वरूप। उसका अनुभव होना। मैं ज्ञानमात्र हूँ मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं याने ज्ञानके सिवाय जो कुछ है उस सबका प्रवेश नहीं मेरे स्वरूपमें, ऐसा जब मैं देखता हूं, जो दिखता है वह निर्भार है। उसपर किसी भी प्रकारका बोझ नहीं है। मार्ग तो दिख गया। अब चले बिना उस स्थानपर पहुंच नहीं सकते। तो चलनेका उद्यम करना है। मैं ज्ञानमात्र हूं ऐसा बराबर सोचना, मनन करना और ऐसा ही उपयोग बनाना कि जिसमें अन्य सब विस्मृत हो जाय और मात्र यह ज्ञानमात्र तत्त्व ही उपयोगमें रहे, ऐसे अनुभवमें इस जीवपर किसी भी प्रकारका भार नहीं रहता।

(३६) **ज्ञान मात्र अन्तस्तत्त्वकी आराधनाके प्रसादसे अनन्त आत्मावोंको सिद्धिका लाभ**—जो भी आत्मा अनन्त सुखी हुये हैं वे सब केवल इस ज्ञानमात्र अन्तस्तत्वकी दृढ़ आराधनाके प्रसादसे हुए हैं। मैं ज्ञानमात्र हूं ऐसी अपने आपके स्वरूपकी दृढ़ प्रतीति दृढ़ मग्नताके लिए इस अनादिसे विकारमें पगे आये हुए पुरुषको जो कठिनाइयाँ होती हैं उन कठिनाइयोंके वातावरणको दूर करनेका नाम है श्रावकधर्म और मुनिधर्म। चाहे श्रावक हो चाहे मुनि हो, कोई ज्ञानी हो, उद्देश्य एक ही है ज्ञानमात्र अंतस्तत्वमें उपयोगको स्थिर बनाना। लेकिन कठिनाई आती है संस्कारवश इन्द्रियविषयोंके संगमें जो विकारको हम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यक्त कर रहे थे उनका समागम एक कठिनाई है उसको दूर किया श्रावकोंने थोड़ा और पूर्ण रूपसे दूर किया मुनियोंने । अब जैसे कोई निरंतराय वातावरण पाकर अपने संयमको कुशलतासे निभाता है ऐसे ही गुणी जनोंने एक निरंतराय वातावरण पाया तो काम उनका एक ही रह गया । ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी आराधना करना, इसके प्रसादसे कितने आत्मा पवित्र हुए ? अनन्त आत्मा । निगोद जीवको छोड़कर जितने संसारी जीव है असंख्याते पृथ्वीकाय, असंख्याते जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय नारकी, मनुष्य, देव, पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच ये सब जितने संसारी जीव हैं, इन सबकी जितनी गणना है उनसे अनन्त गुने हैं सिद्धभगवान । सिद्ध भगवन्तोंसे अनन्त गुनी संख्या निगोद जीवोंकी है । तो निगोदके बाद द्वितीय संख्याका नम्बर है तो सिद्धका । इतने सिद्ध भगवंत जो पवित्र हुए हैं वे हुए हैं इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्वकी आराधनासे । दृष्टि बराबर अपनेमें ऐसी मनन करनेकी बनाये कि मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञान ज्ञान ही मैं हूं । ज्ञानसिवाय मेरेमें कुछ नहीं, ऐसा यह ज्ञानमात्र है, इसका कुछ है कहां ? इसका कुटुम्ब ? बिल्कुल स्ववचनवाधित है । इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वका कुछ प्रसंग संग कहां है, क्या है कौन है बाहरका ? केवल यह मैं ज्ञान ज्ञानमात्र हूं, ऐसी आराधना बनाओ ।

(४०) शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी धुन बिना बड़े-बड़े पुण्यशालियोंकी भी निरापदताका अभाव—बड़े-बड़े पुण्यशाली जीव जिनके बहुत-बहुत पुण्य माना गया वे भी तब तक कष्टमें रहे जब तक ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी उपासनामें मग्न नहीं हुए । श्रीराम भगवान जिनका चरित्र पद्मपुराणमें बहुत वर्णित है पुण्यवान माने गए । नारायणने बलभद्रकी सेवा की हो उसका यह मुख्य उदाहरण है । और जिन्दगी कैसे बीती ? उनका बचपन दुःखमें बीता, कुछ बड़े हुए तो उस समयकी घटनायें देखो, घर आये, राज्यके योग्य हुए, सबसे बड़े ही तो पुत्र थे दशरथके, जब राज्यपद देने लगे उस समयकी बाधायें देखिये । कैकेई रानीने जब यह देखा कि दशरथ विरक्त हो रहे हैं, भरत भी विरक्त हो रहा है । पतिसे भी गए, पुत्रसे भी गए । तो यह दशरथ तो माननेके नहीं । तब एक जो वर पहले दिया था (रथकुशलताके उपलक्षमें मिला था) उसका वर आपके धरोहर है सो दीजिए ?···हां लो । क्या चाहती हो कैकेई ? ····बस यही चाहती हूं कि भरतको राज्य दें । रामसे बिगाड़ न था । कैकेईको विवश होकर कहना पड़ा था, और कोई उपाय न सूझा था कि भरतको वह विरक्त होनेसे रोक सके । और श्रीरामको राज्यपद मिलते-मिलते हुआ क्या ? भरतको राज्य दिया गया । लोग कहते हैं कि सज्जनता उत्तम चीज है, मगर सज्जनताका फल भी कष्ट है अथवा यों कहो कि कष्ट बिना सज्जनता भी नहीं आती । श्रीरामने सोचा कि मेरे रहते हुए भरतका प्रताप कैसे बढ़ेगा ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लोग तो मुझको ही चाहते हैं, आदर रखते हैं। जब तक अयोध्यामें रहूंगा तब तक भरतका प्रताप न बढ़ेगा, यह सोचकर श्रीराम जंगल चले गए। देखिये—बुराई किसीमें न थी, मगर विपत्ति सभीने पायी। भरत बड़े भाईके इतने भक्त कि यही मानकर राज्य किया कि राज्य तो श्रीरामका ही है, चरणचिन्ह घर दिये कि यह है राज्य करने वाला। अच्छा, तो बनवास में कोई आराम मिला करता है क्या ? स्प्रिंगदार पलंग हों, ये बिजलीके पंखे हों, अच्छे महल हों, ये कुछ साधन रहते हैं क्या ? वहाँ भी दुःख भोगा। भले ही पुण्योदय था, देवोंने सहाय किया, पर मौजकी बात तो किसी-किसी दिन थी, सारे दिन तो कष्टके ही थे। रहे आये रहे आये, एक दिन ऐसा हुआ कि सीताको रावण हर ले गया। उसके पीछे श्रीरामको इतना वियोग कष्ट हुआ कि उनकी बुद्धि उद्विग्न हो गई, वे अधीर हो गए, जगह-जगह सीताका पता लगाते फिरे, आखिर युद्ध हुआ। यह एक उनकी विपत्तिकी बात कह रहे। भले ही उनके पुण्यका बहुत उदय था, परन्तु एक लौकिक निगाहसे देखो तो उनका सारा जीवन दुःख ही दुःखमें गया। सीताको रावणसे छुड़ाकर वापिस लाये, युद्धमें जीते, फिर एक साधारण धोबी की स्त्रीने कुछ बक दिया—लो सीताको आफत आयी। श्रीरामने अपनी मर्यादाको कायम रखनेके लिए सीताको जंगलमें छुड़वा दिया। अरे वह धोबिन तुरन्त ही कह देती तो भी गनीमत थी, पर सालों बादकी घटना थी कि धोबिनने कुछ बक दिया तो वहाँ श्रीरामने सीताको जंगलमें छुड़वाया। सीताने जंगलमें दुःख सहे, श्रीरामने वहाँ दुःख सहा। यह वियोग बहुत दिनों तक हुआ। बादमें सीताके पुत्र लव और कुशसे श्रीरामका युद्ध हुआ। युद्धके बाद जब बात मालूम हुई तो सीताको फिर घर लाये। तो श्रीरामके चित्तमें मर्यादा रखनेकी फिर कल्पना उठी। सीताको परीक्षा देनेका हुक्म किया। सीताने स्वयं ही पूछा कि तुम क्या परीक्षा लेना चाहते हो ? विषपान करूं या अग्निमें कूदूं या और कुछ बात हो ? तो श्रीरामने सोचा कि विषपान किए जानेपर तो लोगोंको विश्वास नहीं हो सकता, वे सोचेंगे कि विषकी जगहपर शायद शरबत ही पिला दिया गया होगा। यह सोचकर श्रीरामने अग्निमें कूदनेका आदेश दिया। श्रीरामके चित्तमें वहाँपर भी अनेक प्रकारके विकल्प रहे, पर अन्तमें अग्नि-परीक्षा हुई और परीक्षामें सीताको उत्तीर्णता मिली। अग्निपरीक्षा हो चुकनेके बाद श्रीरामके मनमें आया कि अब सीता आरामसे घरमें रहे, पर सीताके मनमें इस प्रकारका कुछ विचार कैसे हो सकता था। वह आर्यिका हो गई। खैर यहाँ और दूसरी घटना देखिये—राम लक्ष्मण का प्रेम सम्वाद सुनकर देवोंने परीक्षा की। श्रीराम मर गए ऐसा वातावरण देवोंने बना दिया, बड़ा रुदन भी सुनाया, जिसे सुनकर लक्ष्मणने जाना कि राम मर गए। वहाँ उस दृश्यको देखकर लक्ष्मणके प्राण समाप्त हो गए। लक्ष्मणके मरनेके बाद श्रीरामने छह माह तक क्या

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रवृत्ति की ? लोगोंको यह ख्याल हो गया कि श्रीराम कहीं पागल तो नहीं हो गए। देवोंने कई बार घटनायें दिखायीं। पत्थरोंपर कमल उगाये गए, सूखे हुए पेड़को सींचनेके दृश्य दिखाये गए, मरे हुए बैलोंको गाड़ीमें जोतनेका प्रयास दिखाया गया, अनेक घटनायें देखकर श्रीरामको सही ज्ञान जागृत हुआ, ज्ञानाराधनामें लगे और मुक्त हुए। जब तक ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी सुधमें दृढ़ नहीं हुए तब तक संकटोंसे मुक्त न हुए। यह तो श्रीरामकी बात कही। एककी ही बात नहीं, सबकी यही बात है।

(४१) **मोह और क्षोभसे पूर्ण विषैले जीवनकी व्यर्थता**—हम आपकी तो स्पष्ट बात है। रात दिनके चौबीसों घंटे करते ही क्या हैं ? सब विडम्बना, सब मूढ़ता, बेकारकी बातें। रागद्वेष मोह विरोध, यहाँ वहांकी बातें, जिनसे कुछ सम्बंध ही नहीं। कितनी विडम्बना हम रात दिन किया करते हैं। जो कल सुबह किया सो आज किया, सो ही पचासों वर्षोंसे करते आ रहे, जो दोपहरको किया सो अब किया। ५ इन्द्रिय और मनका विषय इनको ही रोज रोज भोगते रहते हैं, रोज खाया, रोज छोड़ा। तीनों लोकमें ऐसा कौनसा पुद्गल है ग्राह्य जिसे जीवने अनेक बार ग्रहण न किया हो। अनेक बार ग्रहण किया अनेक बार छोड़ा तो ग्रहण करके छोड़े हुएको तो जूठा कहा करते हैं। हम आप रोज रोज क्या करते हैं ? वही भोजन रोज खाते। रोजके इन्द्रियविषय वही रोज सेवन करते। भ्रम बना लिया है कि ये जो मेरे लड़के हैं सो मेरे हैं और बाकी दुनियाके जो जीव हैं सो गैर हैं। फल क्या होता है ? इसे कहते हैं कूपमण्डूक। उसी सीमामें हमारे विचार डोलते रहते हैं और उससे ममता पुष्ट होती रहती है। अरे राग करो तो खूब करो, पर एक बात तो मान लो कि राग करो तो सबपर करो। सारे अनन्त जीवोंको छोड़कर दो चार जीवोंपर राग करनेका परिणाम बहुत भयंकर है। सब परमात्म स्वरूप नहीं हैं क्या सब जीवोंमें उस स्वभावको देखो, श्रद्धा सही रखो, कर्तव्यका प्रोग्राम सही रखो, और यह तो परिस्थिति है कि जो एक ऐसा हो गया है कि भाई हम इस घरके ६-७ जीवोंकी सम्हाल करें, तुम इस घरके ६-७ जीवोंकी सम्हाल करो, यह इस घरके ६-७ जीवोंकी संहाल करें। यह बंटवारा हो गया। लो सब मनुष्योंकी अच्छी व्यवस्था हो गई। यह तो एक परिस्थिति वश ऐसा हो रहा, ऐसा जानियेगा, पर जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही सब जीवोंका है। जैसे आपके घरमें रहने वाले जीव हैं वैसे ही सब जीव हैं। सबमें परमात्मस्वरूपके दर्शन करें। यदि यह प्रकृति बन जाय कि किसीसे भी बोलें, नौकर हो तो, मजदूर हो तो, एक बार यह स्मरण कर लें कि इनमें भी परमात्मस्वरूप है। बात व्यवहार करें, हुकुम भी दें, पर उसमें परमात्म स्वरूपका स्मरण हो जाय और फिर आप जो वाणी बोलें तो उसे वह फिर भगवानकी वाणी जैसा समझेगा, आपकी रुचिपूर्वक आज्ञा मानेगा। आप प्रसन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

होगे, दूसरा भी प्रसन्न होगा और जहाँ उस परमात्मतत्त्वको भूल गए, आज्ञा देने वाला भी क्लेशमें है और आज्ञा लेने वाला भी क्लेशमें है। तो आज्ञा देने वाला गर्वसे आज्ञा देगा, दूसरोंको तुच्छ समझकर देगा, दूसरा अपनेमें तुच्छताका अनुभव करता हुआ लेगा। आज्ञा देने वाला भी दु:खी और आज्ञा लेने वाला भी दु:खी। कहीं यह न समझना कि जिनपर हुक्म चलता है दु:खी वे ही हैं। उनसे भी अधिक दु:खी हुक्म देने वाला होता है। आज्ञा लेने वालेको क्या? छोटा सा कर्तव्य, जो कहा सो कर दिया, किन्तु आज्ञा देने वालेपर कितना भार है? सब सम्हालें, यह भी न बिगड़े, यह भी काम चले, यह भी बने। मतलब यह है कि संसारमें सबको क्लेश है।

(४२) **शाश्वत आनन्दके प्रयासमें विवेक**—जो अपने परमात्मस्वरूपका दर्शन करे और दूसरे जीवोंमें जो परमात्मस्वरूपका स्मरण करे ऐसा उदार विशाल हृदय जिसका हो गया है वह धर्ममूर्ति, वह भव्य जीव बात-बातमें स्वयं भी प्रसन्न है और दूसरा भी प्रसन्न रहता है। संसारमें कोई अपना गड़बड़ बनानेका काम नहीं पड़ा है, यहाँसे तो बिस्तर बंडल बोरिया सब छोड़कर जाना ही पड़ेगा। धर्मदर्शनका नाता सच्चा नाता है, बाकी सर्व संगका नाता यह मेरे आत्माके लिए हितकारी नाता नहीं है। बड़े-बड़े चक्री हुए, इतिहासमें बड़े-बड़े राजा हुए—चन्द्रगुप्त, सेल्यूकस, जहाँगीर वगैरह, जिन्होंने अपने-अपने जमानेमें बड़े-बड़े किले बनवाये, महल बनवाये, तो उसका क्या फल हुआ? हम अपने आपमें इस ज्ञानमात्र अंत-स्तत्त्वकी भावनाको दृढ़ बनायें तो यह है सर्वसिद्धि। आनन्द बातमें नहीं, न वाणीमें है, न सुननेमें है। एक अंदाज भर कर लो कि जिस बातके सुननेको भी कुछ आनन्द सा आता है। जिस बातके बोलनेमें भी आनन्द सा होता है, उसके प्रयोगमें कितना आनन्द होगा। बात स्पष्ट सही सीधी है। प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, निरन्तर उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है, किसीका अस्तित्व किसी अन्यकी दयापर नहीं है, ऐसी स्वतंत्रता ऐसा सत्त्व जब है तो हमें क्या अधि-कार है कि मैं झूठ मूठ ऐसा समझ लूं कि यह तो मेरा ही है। यह तो मेरे ही अधिकारमें है। यह पुत्र, यह घर, यह स्त्री, यह पिता ये सब मेरे हैं ऐसा माननेका हमको अधिकार नहीं है। व्यवहारकी बात व्यवहारमें है, लेकिन श्रद्धामें हम नहीं कह सकते कि मेरा कौन है। "जहां देह अपनी नहीं, वहां न अपना कोय। घर सम्पति पर प्रकट ये, पर है परिजन लोय।" इस जीवनमें तो हम आप हिसाब बनाते हैं, ऐसा काम कर लें कि बाकी जिन्दगी सुखमें गुजरे, इतनी दूकान बना लें, इतनी आय कर लें, फिर बैठे-बैठे सुखसे जिन्दगी कटेगी। ऐसा हो नहीं पाता, किसीके भी नहीं हुआ, क्योंकि कषायें दूर हों तब शांति मिले। कषायें तो और बढती जाती हैं, पर सोचते जरूर हैं ऐसा सभी लोग कि ऐसा कुछ काम वना

लें कि बाकी जीवन बड़े सुखमें बीते। अच्छा थोड़ा बना लिया। अब मरेके बाद जहाँ जन्म लेंगे वहांका क्या प्रोग्राम बनाया ? यहाँ कुछ जबरदस्ती थोड़ा बहुत कुछ मान भी लिया, पर मरेके बाद, इस देहको छोड़नेके बाद जो दूसरी देह मिलेगी उस जीवनके लिए क्या किया ? क्या करें ? मरकर अगर यहाँ मक्खी मच्छर बन गए तो क्या धर्म, क्या जैनशासन ? सबसे हाथ धो बैठे ? देखिये—परलोक है, हमारी सत्ता है, हम पहलेसे हैं, हमेंशा तक रहेंगे, क्योंकि हम हैं, यह ही सबसे बड़ा भारी प्रमाण है। हम हैं इसलिए अनादिसे हैं और अनन्तकाल तक हैं। किसी भी है की अजीवके साथ कोई कल्पना ही नहीं बन सकती। है तो उसका अभाव हो ही नहीं सकता। भले ही परिणतियां बदले, कुछसे कुछ श्रद्धा बने, मगर अभाव नहीं हो सकता। हम हैं तो सदा रहेंगे। जब मुझे सदा रहना है, अनन्त काल तक रहना है तो कैसे हमें रहना चाहिए, यह भी तो ध्यानमें लायें।

(४३) **ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वके अनुरूप प्रवर्तनमें उभयलोकमें समृद्धि**—दो पुरुष विवाद करने लगे। एक परलोकको मानने वाला और एक परलोकको न मानने वाला। कुछ विवादके बाद इस बातपर आये कि भला परलोक न मानने वाले भाई यह तो बताओ कि हिंसा, झूठ, चोरी आदिक पाप करके इस जीवनमें सुखी रह सकते हो क्या ? बोला कि नहीं रह सकते। तो इस जीवनमें भी सुखी रहनेके लिए सदाचार चाहिए ना और यदि परलोक निकल आया तो सदाचारके प्रतापसे वहाँ भी क्या बाधा आयगी ? और जो परलोक नहीं मानते वे यहाँ स्वच्छन्द रहते तो यहाँ भी दुःखी और परलोक निकल आया तो वहाँ भी दुःखी। अनेक मनुष्योंका जाति स्मरण सुना जाता है वह परलोकका ही तो साधक है। बच्चा उत्पन्न होता है तो भले ही धाय अथवा माँ बच्चेको मुखस्थानसे लगा दे मगर दूधका गुटकना, पेटमें ले जाना यह बात सीखनेमें तो बहुत समय लगता, मगर वह तो तुरन्त गुटक जाता। संस्कार था उसके पूर्वजन्मका। आहार संज्ञाका संस्कार था। जो सत् है उसका अभाव नहीं, हम हैं तो हमारा अभाव नहीं। अब हमको सदाके लिए सुख शान्ति मिले ऐसी कोई बात सोचे तो भली है कि बुरी ? केवल एक जीवनके ही सुखकी बात सोचना और आगेका कुछ भी ख्याल न रखना यह तो भला नहीं है। इस भवमें भी सुखी रहो, आगे भी सुखी रहो और सदाके लिए सर्व झगड़ोंसे मुक्त होकर सदाके लिए शान्त हों ऐसा ही उपाय करनेमें भलाई है। मोह करने पर भी कौन सी सिद्धि बना लेते हैं। न करें मोह, घरमें रहे तो भी है तो वह ही पुत्र, मित्र, स्त्री, क्या टोटा पड़ा ? बल्कि मोह करनेसे टोटा है। मोहमें पुत्र स्वच्छन्द बन जाय, खुद खराब हो जाय, क्योंकि मोही पिताका पुत्र पर प्रभाव नहीं रह सकता। मोहमें लाडला बन गया। पुत्रको कोई भय नहीं रहता और पितासे कैसा ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पेश आ सकता है और निर्मोह हो पिता, अपने भावोंमें अज्ञानरहित हो पिता तो पिताकी प्रवृत्ति भी ठीक रहेगी और पुत्र भी बड़ी आज्ञा और नम्रतामें रहेगा। मोही पुरुषका प्रभाव उत्तम नहीं होता परिवारमें, किन्तु निर्मोह पुरुषका प्रभाव परिवारमें उत्तम होता है। तो निर्मोह रहनेमें इस जीवनमें भी आनन्द पाया और आगे भी आनन्द पाया। वह निर्मोहता कैसे प्रकट हो ? उसका उपाय है वस्तुस्वरूपको ही समझकर अपने को सही स्वरूपमें अनुभव करना। मैं ज्ञानमात्र हूं।

सभी महर्षि संत दार्शनिकोंने चाहा तो यह होगा कि जो कल्याणका मूल साधन है ज्ञानमात्र अंतस्तत्वका अनुभव उसके ही विषयमें बातकी होगी। लेकिन जब एक कानसे दूसरे कानमें बात जाय। दूसरेसे तीसरेमें जाय। हजार कानों तक यों पहुंचे तो बात कुछसे कुछ बन सकती है। यह भी ऐसा होता है और फिर कहने वालेका आशय कुछ हो और सुनने वालेका आशय कुछ हो तो वहाँ विपरीत बात तो आ ही जाती है। वहाँ तो था ज्ञान मात्र अंतस्तत्वके अनुभवका वहाँ किसीको मालूम हुआ कि वहाँ फिर रहना क्या है ? जैसे कि लोग पूछते कि भगवान तीनों लोकको जानते तो वे बेकार जानते। अरे उनसे आधा ही ज्ञान हमें होता तो हम कितना ही धन कमा डालते। समझ जाते कि इसका भाव बढ़ेगा तो पहले ही खरीदकर रख लेते और उससे फायदा उठा लेते। तो भाई यह संसार ऐसा ही है, यहाँ विभव उसको ही अलौकिक मिलता है जो विभवसे अलिप्त रहता है। जो छायाको पकड़ने चलता है छाया उससे दूर ही भागती है। जो छायासे विमुख होकर चलता है, छाया उसके पीछे चलती है, और फिर तीनों लोकका भी वैभव मिल जाय तो भी आनन्द न आयगा और एक सर्व विविक्त ज्ञानमात्र अंतस्तत्वका दर्शन होगा तो अलौकिक आनन्द जगेगा। छोटे छोटे बच्चे तो किसी रेतीले स्थानपर रेतको अपने पैरपर रखकर उसे थपथपाते हैं, उससे पैर निकालकर एक घरसा बना देते हैं और कहते हैं कि मेरा घर बन गया। उस घरको अगर दूसरा लड़का मिटा दे तो लड़ाई ठन जायगी और जिसने वह घरबूला बनाया, अपने पैरपर रेत चढ़ाकर जिसने वह घर बनाया वह बच्चा अपनी ही लातसे अपना घर मिटाता है तो खुश होकर मिटाता है। तो अज्ञानसे हमने अपना एक घरबूला बनाया, मिथ्या भ्रमपूर्ण एक जाल बनाया तो हम ही क्यों न प्रसन्न होकर इस जालको एक लातसे उड़ा दें। मिटना तो है ही। दूसरा मिटायेगा तो तकलीफ पायगा। दूसरा न मिटाये, उससे पहले खुद ही मिटा डालें तो आनन्द मिलेगा। यह ही तो हो रहा है। जन्म लिया, मरण करते हैं, करना पड़ता है, दूसरा मिटाता है यह खुद नहीं मिटाना चाहता, आयुका क्षय होता, मिटाना पड़ रहा, फिर संयोग होता, फिर वियोग होता, ये सब बातें चल रही हैं। तो रोजके वियोग जीवनके वियोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में ज्ञानबलसे इन सबसे न्यारा अपनेको समझ लूँ अभी तो वियोग हो गया, मगर परवश होने वाला वियोग उस क्लेशमें है और सुवश वियोग कर लेवे अपने ज्ञानबलसे सबसे निराला ज्ञानमात्र ज्ञानस्वभाव अपने परमात्मस्वरूपमें आ जाय तो वियोग हो गया सबका। तो अपनी बुद्धिबलसे ऐसा कोई वियोग बनाये तो उसमें तो प्रसन्नता है, आनन्द है, यह अभ्यास रोज-रोज करनेका है। धर्मके लिए और काम करनेको है क्या? केवल विभक्त एकत्व चैतन्यस्व-भावके आश्रयणका यह ही काम करनेका है।

(२३) **अन्तस्तत्त्वके लक्ष्यको न भूलकर आवश्यक कर्म करनेका अनुरोध**—इस स्व-भावके आश्रयके करनेमें हमारा साहस नहीं होता, हमारी रुचि नहीं होती, हम सफल नहीं हो पाते तो भी धुन यह ही बनावें और सफल होनेके साधन बनायें, वह साधन है देवदर्शन, स्वाध्याय, सामायिक आदि। करने योग्य काम एक ही है। ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी प्रतीति और उस ही में उपयोगकी स्थिरता। तब ये कहने मात्रको थोड़े ही हो जाते हैं। वहाँ शंकायें करते हैं तो उसका साधन है यह सब। देवदर्शन, श्रावकके ६ कर्तव्य। उन षट्कर्मोंको करते हुएमें उद्देश्य न भूलें तब तो सही काम बनेगा नहीं तो कई बातें विडरूप हो जायेंगी। जैसे एक सेठने अपनी लड़कीकी शादीमें जोमनवार की, पातल परोसी, पत्तेके पातल। मिठाइयाँ बनवायीं, वे भी परोसी। और, साथमें यह सोचा कि ये सब जीमने वाले लोग हमारी पातल में खा जायेंगे और हमारी ही पातलमें छेद कर जायेंगे। दाँत खरोंचनेके लिए उस पातलमें से सींक निकालते हैं। जिस पातलमें खाया उसी पातलमें छेद भी किया यह आदत है सबकी। तो सेठने सोचा कि जहां इतनी-इतनी मिठाइयां वितरण कर रहे हैं वहाँ एक एक सींक भी धर दें सो चार-चार अंगुलकी सींक भी साथमें परोस दी ताकि लोगोंको पातलमें छेद न करना पड़े। खैर उस जीमनवारके बाद सेठ तो गुजर गया। उसके बाद उसके लड़केने अपनी लड़की का विवाह किया। वहाँ उसने सोचा कि मैं अपने पिताजी से भी अधिक अच्छे ढंगसे विवाह करूँगा। पिताजी ने दो तीन प्रकारकी मिठाइयाँ बनवायी थीं तो मैं ५-६ प्रकारकी बनवाऊँगा और पिताजी ने चार अंगुल ही सींक परोसी थी, हम १ विलास्तकी डंडा परोसेंगे। खैर उसने कई तरहकी मिठाइयां भी परोसवायीं और साथ ही एक-एक बेथाका एक-एक डंडा भी परोस-वाया। तो देखिये वहाँ चार अंगुलकी सींकके परोसनेका उद्देश्य न जानकर एक एक बेथाका डंडा परोसनेकी नौबत आ गई। तो भाई षट्कार्योंको करते हुएमें अपना उद्देश्य न भूलें। उद्देश्य भूल भूलकर की जाने वाली समस्त चेष्टायें विडम्बनाका ही कारण बनती हैं।

(४५) **आत्मस्वरूपकी ज्ञानघनता**—मैं ज्ञानघन हूं, स्वरूपद्रष्टा, अपने आपमें मनन कीजिये कि मैं ज्ञानघन हूं, घनका अर्थ है ठोस, वजनदार नहीं, किन्तु ठोस। भले ही ठोस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेके कारण स्कंध वजनदार होता है लेकिन घनका अर्थ वजनदार नहीं, निरन्तर वही वही होनेका नाम घन है। जैसे कहते कि यह लकड़ी ठोस है, सारभूत है, तो उसका अर्थ यह है कि इस लकड़ीके बीच कोई अन्य चीज नहीं, वह लकड़ी लकड़ी ही है, यों वह ठोस है। तो यह आत्मा ज्ञानघन है, ज्ञानसे ठोस है अर्थात् यह ज्ञान ही ज्ञान निरन्तर है, स्वभाव, सहज ज्ञानभाव प्रति प्रदेशमें निरन्तर है। जैसे जलसे भरे हुए कलशमें बीचमें बिन्दु मात्र भी जगह खाली नहीं, किन्तु ठोस है पानीसे। जैसे कलशमें चने भर दिए जायें तो वहाँ ठोस नहीं है, बीच-बीचमें अन्तर है। जल भरा हो तो अन्तर नहीं रहता। जल भरे हुए कलशको लोग क्यों सगुन मानते हैं कि जलपूर्ण कलश ज्ञानघन आत्माकी याद दिलानेमें उदाहरणभूत है। जैसे यह जल भरा कलश भीतरमें बीचमें ठोस है, एक प्रदेशमात्र भी जलसे शून्य नहीं है, जल भरा रहता है, यों ही यह आत्मा ज्ञानघन है। पहली बात बतायी थी कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। और अब बताया जा रहा है कि मैं ज्ञानघन हूँ। विरोध दोनोंमें नहीं है, पर एक विधिका अन्तर है। ज्ञानमात्र हूं ऐसा कहनेमें यह आया कि मैं ज्ञानमात्र हूं। इसमें और कुछ चीज नहीं है, और ज्ञानघन कहनेमें यह आया कि यह कोई असार बेहोश वस्तु नहीं है, अधूरी नहीं है, किन्तु यह परिपूर्ण ज्ञानघन है, इसी कारण यह अपरिपूर्ण नहीं है। लोग अपनेको यह अनुभव करते कि यह मैं पूरा नहीं बना, अधूरा हूँ, लेकिन देखो स्वभावको यह कहीं अपूर्ण है ही नहीं. सर्वत्र पूर्ण है। सर्वस्थितियोंमें पूर्ण है, सर्वदा पूर्ण है, जो अपूर्ण हो वह सत् ही नहीं है। कोई भी सत् अपूर्ण नहीं होता। किसी द्रव्यकी सत्ता आधी हो पायी हो और आधी होना बाकी हो, ऐसा कहीं नहीं है। जो है सो पूर्ण है। पूर्ण था, पूर्ण रहेगा, लगातार पूर्ण ही पूर्ण है। मैं आत्मा ज्ञानघन हूं, ज्ञानसे परिपूर्ण हूं।

(४६) अपूर्णता व परमें कृत्यताका अभाव होनेसे ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वमें कष्टका अनवकाश—मोहमें जो लोग अपनेको अधूरा समझते हैं उनको कुछ करनेको पड़े का विकल्प है और जिनको कुछ करनेको पड़ा हो उनको चैन नहीं है, शान्ति नहीं है, आराम नहीं है, यह सब कल्पनाओंकी बात है। वहाँ इस जीवमें अधूरापन नहीं, न कुछ आधा किया है। आधा करनेको पड़ा हो ऐसा भी नहीं है। तब जो पर्याय होती है वह पूर्ण है। करनेको पड़ा क्या ? पर मोही जीवकी कल्पनामें यह बात होती है कि अभी यह काम अधूरा है, इसे पूरा करना है। मोहका विषय है अनेक द्रव्य। एक द्रव्यमें मोह उत्पन्न नहीं होता। किसी भी एक द्रव्यको देखें, खालिस द्रव्यको देखें वहाँ मोह ही नहीं हो सकता। स्कंधोंमें मोह है। यह अनेक द्रव्योंका पिण्ड है, एक द्रव्य दृष्टिमें हो तो मोह किसपर करे। और इसीलिए निश्चयनय का महत्त्व भी कल्याणके उपायमें बताया है। वह एक द्रव्यको निहारता है। तो जैसे निश्चय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नय एक द्रव्यको निहारनेका उपाय होनेसे उपयोगी होता तो व्यवहारमें भी निषेधमुखेन कि ये विभाव ये नैमित्तिक हैं, औपाधिक हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं, यों निषेधमुखेन इन परसम्पर्कोंसे जुदा करके अपने स्वभावकी ओर आनेका अवसर देता है। एनकेन प्रकारेण यह आत्मा अपने शुद्ध स्वभावकी ओर दृष्टि करे तो इसको मुक्तिका मार्ग मिलता है। मैं परिपूर्ण हूं, ज्ञानघन हूं, कोई मकान बना रहा है, बना नहीं रहा, कौन बना सकता ? कौन दूसरे पदार्थोंकी परिणतिको कर सकता ? किन्तु लोकमें दिखता ही है, कहते ही हैं कि मकान बनाया जा रहा है, भींत उठ गई, छत अभी नहीं पड़ी, कहते हैं कि अधूरा पड़ा है काम। इसे पूरा करना है। विकल्पमें माना कि ऐसा ऐसा हो इसे पूरा कहते हैं। ऐसा हो नहीं पाया तो यह अधूरा है, पर वहाँ सभी पदार्थोंमें परिपूर्णता है। भींत वहीं हैं, भींतमें जो अणु है, जहाँ जो भी पदार्थ है, किसीकी आधी सत्ता नहीं, समस्त परिपूर्ण हैं। मोहीने सोचा कि ऐसा होना चाहिए इतना सम्बंध और इतना संयोग, और उसके न होनेको अधूरा कहते हैं। ज्ञानीको बाहरमें कुछ करनेको पड़ा ही नहीं है, क्योंकि उसने निर्णय किया है कि समस्त पदार्थ परिपूर्ण हैं। परिपूर्ण पूर्ण पर्यायको निरन्तर उत्पन्न करता रहता है। मेरे करनेको बाहरमें कुछ पड़ा ही नहीं है। देखिये सबको शान्ति मिलती है इसीं भावके आधारपर कि मेरे करनेको कुछ पड़ा नहीं है। करनेपर भी करनेके भावमें शान्ति नहीं है, किन्तु करनेको अब कुछ नहीं है इस भावमें शान्ति है। मोहमें लग रहा यों कि काम करनेसे शान्ति होती है, पर जिसको जब भी जितनी शान्ति मिली उसको "मेरेको कार्य नहीं है" इस भावसे शान्ति मिली है मकान पूरा बन चुकनेपर जो एक शान्तिका अनुभव कर रहा, हो गया काम। कोई भी कार्य पूर्ण कर लेनेपर उसको शान्तिका अनुभव होता है वह शान्ति कार्य करनेसे मकान बनानेसे नहीं है। जब यह भाव आया कि अब वह कार्य करनेको नहीं रहा तब शान्ति मिलती है, और जब तक चित्तमें यह बात बनी थी कि अभी काम करनेको पड़ा है तब तक अशान्ति थी। इसमें उसने काम करनेके बाद एक भाव बना पाया कि मेरे करनेको अब काम नहीं है। ज्ञानी मुनि संत साधु कामको छुवे बिना ही पहलेसे ही यह भाव रखते हैं कि 'मेरेको बाहरमें कुछ काम करनेको नहीं है।

(४७) **कृतकृत्यताके भावमें शान्तिका लाभ**—शान्ति मिलती है सबको कृतकृत्यता के भावमें। एक मित्रका पत्र आया कि हम १० बजेकी रेलगाड़ीसे इस नगरसे गुजर रहे हैं सो आप हमें स्टेशनपर आकर मिलें। मित्रका पत्र देखकर उसको उससे मिलनेकी जबरदस्त उत्कंठा हुई। मिलना है, मिलना है। रोज ८ बजे तक नींद लिया करते थे, पर उस दिन वह इस उत्कंठासे काम कर रहा था कि हमें मित्रसे मिलने जाना है। इस भावसे वह ६ हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बजे जग गया। सब काम जल्दी-जल्दी करने लगा। नहाना, नास्ता करना और जल्दी ही स्टेशन पहुंचना। वहाँ पूछा कि यह ट्रेन किस समय आ रही है ? तो वहाँ बताया कि उस ट्रेनका तो १० बजे आनेका समय है पर आज १५ मिनट लेट आ रही है, लो यह बात सुनकर वह कुछ रंजमें आ गया। आज उस ट्रेन पर उसे करुणा उत्पन्न हो गई, दुःख मानने लगा—हाय लेट है, रोज-रोज यह बात उसे न आ पाती थी, क्योंकि उसे काम करनेको पड़ा है ऐसा मनमें भाव है। गाड़ी आयी, सभी डिब्बोंमें दृष्टि लगाया। जिस डिब्बेमें वह मित्र बैठा था उसमें पहुंचा वहाँ मित्रसे मिला और एक आराम पाया, शान्ति पायी। थोड़ी ही देर बाद वह मिलने वाला शख्स खिड़कीसे झाँकने लगा। उतरनेकी सोचने लगा। कहीं गाड़ी चलनेको तो नहीं है, गार्डने कहीं सीटी तो नहीं दी, कहीं हरी झंडी तो नहीं दिखा दी। अब यहाँ बात पूछते हैं कि भाई मित्रसे मिलनेपर अगर आराम मिला है, शान्ति मिली है तो फिर मित्रसे मिलनेका काम क्यों छोड़ते हो ? तुम्हें शान्ति ही तो चाहिए। मित्रसे मिलनेमें शान्ति मिले तो मित्रसे मिलते ही रहो। फिर उससे बिछुड़नेकी बात क्यों सोचते ? उस गाड़ीसे उतरनेकी बात क्यों पूछता ? मालूम होता है कि उसे मित्रसे मिलनेकी शान्ति न थी। शान्ति थी इस भावकी कि अब मेरेको मित्रसे मिलनेका काम नहीं रहा। मनमें यह भाव आया कि अब मेरेको मिलनेका काम नहीं रहा इसकी शान्ति थी। मित्रसे मिलनेकी शान्ति न थी। प्रत्येक कार्यकी ऐसी ही बात है। पञ्चेन्द्रियके विषयोंको भोगता है जीव और उसमें सुख साताका अनुभव करता है। इन विषयोंके भोगनेसे किसीको शान्ति नहीं मिलती, किन्तु अब मेरेको यह विषय भोगनेका काम नहीं रहा, इस प्रकारका जीवमें ज्ञान बना, इस ज्ञानसे शान्ति मिली। शान्ति मिलती है कृतकृत्यताके भावसे।

(४८) **तत्त्वज्ञानमें कृतकृत्यताका दिग्दर्शन**—मैं ज्ञानघन हूं, परिपूर्ण हूं। मेरेको करनेके लिए कुछ नहीं पड़ा है। समग्र वस्तु क्या है ? स्वयं उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। उनमें उनके ही कारण उत्पाद व्यय चलता रहता है। कोई किसीकी परिणति कर सकता नहीं। मैं अपनेमें अपना उत्पाद व्यय करता हूं। समस्त पदार्थ अपनेमें अपने आप अपना उत्पाद व्यय करते हैं। मेरे करनेको कहाँ क्या पड़ा है ? मैं कुछ कर ही नहीं सकता बाहर। तो मेरे करनेको बाहरमें कुछ काम नहीं, इस भावकी शान्ति है ज्ञानी पुरुषको। और कृतकृत्यता भी इसीमें प्रकट है। हम अपनी रात दिनकी घटनाओंमें यह ही तो खोजें कि जब मेरेको शान्ति मिलती है तो किस ढंगसे मिलती है ? करनेकी भावनासे शान्ति नहीं, किन्तु करनेको कुछ नहीं पड़ा है इस भावनासे शान्ति है। खूब परीक्षा कर लो अपनी सारी बातों की। भोजन करनेपर जो शान्तिका अनुभव करते तो वहाँपर भी बहुत निर्णायक दृष्टिसे देख

Version 1

लो, भोजन करनेसे शान्ति नहीं मिली, किन्तु भोजन कर चुकनेपर जो यह भाव बना कि अब मेरेको भोजन करनेका काम नहीं रहा उसकी शान्ति मिली। यह बात समझना कुछ कठिन होगी, क्योंकि सबको भूख लगती है। खाते हैं और पेट भरनेपर ही आराम कर पाते हैं। भूखमें कोई आराम मानता ही नहीं। तो न माने, किन्तु तथ्य यही है कि मेरे करनेको अब कुछ नहीं रहा, शान्ति इसकी है, अन्यथा अनेक दिनोंका उपवास करने वाले मुनिजन साधु संत कैसे शान्त हैं ? बिना भोजन किए ही उनका यह निर्णय चल रहा कि मेरे करने को कुछ नहीं पड़ा, भोजन करनेका कार्य मेरेको नहीं पड़ा, उसके शान्ति है। यह एक कठिन उदाहरण है भोजनका, पर अन्य उदाहरणोंसे बहुत सुगमतया जान लेंगे कि हाँ जब भी शांति मिलती है तो काम नहीं रहा, मेरे करने कार्य नहीं पड़ा, इस भावकी शान्ति मिलती है। और इस तरह भी समझ सकते हैं कि यह मनुष्य किसी विषयके बाद किसीको भी देखने सुननेपर किसी भी विषयके बाद यह अपनेमें किस विधिसे शान्तिका अनुभव करता और कैसे यह अपनेमें तृप्ति लाता है, जैसे मानो निपट गया, उससे उपेक्षा हो गई, अब उस ओर दृष्टि भी नहीं करता, ये विधियाँ बन जाती हैं जब कि वह शान्तिका अनुभव करता है। यह है एक शान्तिकी विधिकी बात।

(४९) भोगत्याग बिना समृद्धिकी असंभवता—भैया ! अब थोड़ा यह देखें कि इस जीवको ये भोग इसके उत्थानके कारण हैं या शान्तिके कारण हैं या भोगसे क्या उद्धार है ? देखो—भोगके त्यागे बिना भोग भोगनेका भी सामर्थ्य नहीं रहता। खानेका त्याग करनेके बाद ही इसको खानेका आनन्द आता है। खाता ही रहे, खाता ही रहे, ऐसा अगर यह अपना कुछ समय गुजारे तो यह खानेके लायक भी नहीं रहता। किसी भी इन्द्रिय विषयका त्याग हुए बाद ही उस इन्द्रियविषयको भोगनेका सामर्थ्य पाता है और उसमें पूर्ति कर पाता है। कोई सनीमाको देखता ही रहे तो वह ऊब जायगा, थक जायगा, उसका त्याग करे कुछ समय को, भले ही १५-२० मिनट बाद फिर सनीमामें पहुंच जाय, मगर कोई सनीमा देखता ही रहे, ऐसा कोई नहीं कर सकता। भोगता ही रहे, भोगता ही रहे, ऐसा कोई नहीं कर सकता। त्याग बिना भोक्ता भी नहीं बन पा सकता। त्याग करके ही कोई भोगका सुख पा सकता है, और यदि कोई सदाके लिए त्याग कर दे तो उसके सुखका क्या कहना ? अद्भुत सुख होगा। मैं ज्ञानघन हूं, ज्ञानसे भरा हुआ हूं, परिपूर्ण हूं। मेरेको कुछ काम ही नहीं पड़ा, ऐसा जहाँ विश्वास है उसे अपने आप धैर्य है, अपने आप समता है और शान्तिका अनुभव है। इसके विरुद्ध जिसमें यह भावना लग रही है कि मैं तो अधूरा हूं, मेरेको तो बहुत काम है, उससे निरन्तर बेचैनी है। तो देखना है अपने आपको कि मैं ज्ञानघन हूं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

(५०) **ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वमें अपूर्णता न होनेसे क्रियाव्यग्रताका अभाव**—भैया! लगता होगा ऐसा कि यह आत्मा मैं तो शून्य हूं। इसमें कुछ रखा ही नहीं है, कोई ठोसकी बात ही नहीं है। जैसे कोई भी द्रव्य गैर ठोस नहीं होता। बताओ आकाश पोला है कि ठोस? आकाश भी पूरा ठोस है, पोला जरा भी नहीं है। आकाशका जो स्वरूप है, आकाश के जो प्रदेश हैं उनमें निरन्तर आकाश बराबर ठोस पड़ा हुआ है। हम दूसरे द्रव्य नहीं हैं। ऐसा निरखकर सोचना है कि आकाश पोला है। पर आकाशका जितना स्वरूप है उसमें आकाश निरन्तर बना हुआ है, वह घन है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें परिपूर्ण है, ठोस है। धर्मद्रव्य उससे स्वरूपमें वह अपने आपमें ठोस है। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे अपने आपमें ठोस हूं। निरन्तर ज्ञान ही ज्ञान समाया हुआ है। पोला हो तो कुछ जरूरत भी हो कि उसका पोल भरना है। जब मैं ज्ञानघन हूं, ऐसा होनेकी गुंजाइस ही नहीं कि इसमें कोई चीज समा सके तो उसमें करनेको क्या पड़ा फिर, लेकिन जिसको अपने ज्ञानघन स्वरूपकी सुध नहीं वह अपनेको सर्वत्र असहाय, दीन, कायर अनुभव करता है और विषयोंसे सुखकी आशा लगाये फिरता है, और इसी कारण कष्ट विपत्ति उपसर्ग उपद्रवोंसे भी घबड़ाया रहता है।

(५१) **परमें इष्टत्वके भ्रममें अशान्ति**—लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहीं जिसपर बाहरी संकट नहीं आया, उपद्रव नहीं आया। चाहे वह धनी हो, चाहे वह ज्ञानी हो, लोक दृष्टि से भी सबपर वियोग आयगा, सबपर अनिष्ट संयोग होते, सबको शरीरमें वेदना भी होती और ऐसा लगाव रखते हैं कि ये दुःख तो अपने आप मोल लिए रहते हैं। सब पर उपद्रव आयेंगे। यदि दुःखी नहीं होना है तो अभीसे ज्ञानको सम्हाल रखना चाहिए, वियोग सब का होगा। पुरुष स्त्री हैं, ये क्या चिर काल तक (अनन्त काल तक) साथ रहे आयेंगे? कुछ ही वर्षका तो साथ है। कोई तो बिछुड़ेगा पहले। पुरुष बिछुड़ेगा तो स्त्री दुःख मानेगी, स्त्री बिछुड़ेगी तो पुरुष दुःख मानेगा। बिछुड़ना तो निश्चित है। पिता पुत्रका सम्पर्क है, बिछुड़ेगा तो कभी। उपद्रव तो आयेंगे ही लोकके। अब यदि इनमें कष्ट नहीं मानना चाहते तो इसका उपाय सिवाय ज्ञानके और कुछ नहीं है। सही ज्ञान हो तो कष्ट नहीं रहता, मिथ्याज्ञान हो तो कष्ट हो जाता है। छोटी-छोटी बातोंमें भी यह बात पायेंगे। विवाह शादी बारातोंमें हजारों रुपयेकी बारूद आतिशबाजी वगैरहमें फूंक दी जाती है, उसका कुछ भी खेद नहीं मानते और कोई २ रुपयेकी कटोरी गुम जाय तो उसका खेद मानते हैं, यह फर्क आता है। कहां तो दो रुपयेकी कटोरी जिसके गुमनेका खेद मानता और हजार रुपयेकी बारूद यों ही खो दी, पर उस के प्रति रंच भी खेद नहीं मानता। तो यह फर्क यों आया कि उसने हजार रुपयेकी बारूदके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषयमें पहलेसे ही यह निर्णय बनाये हुए था कि यह तो फुंकनेके लिए ही है, यह तो नष्ट करनेके लिए ही है। सो नष्ट होनेपर कुछ भी खेद नहीं होता, और कटोरीके बारेमें सोच रखा था कि यह तो जिन्दगी भर रहनेकी चीज है, वह न रही इसका खेद मानता। तो हमारी रोजकी घटनाओंमें भी यह बात दिखती है कि जहां विपरीत ज्ञान बनाया वहां क्लेश है और जहां अनुरूप ज्ञान बनाया वहां क्लेश नहीं। कोई पुरुष इस समस्त संयोगके सम्बंधमें यह निर्णय बनाये कि सबका वियोग होगा, सब मिटेंगे, ये मिटनेके लिए ही मिले हैं तो मिटनेका वह खेद न मानेगा, और जिसने यह बुद्धि बनायी कि ये मेरेको मिले हैं, सदा रहेंगे, इनसे मेरेको फायदा है, हित है, तो कदाचित् वियोग होगा ही, तो उस समय कितना खेद मानता है। सम्यग्ज्ञानके सिवाय कोई अपनेको शरण नहीं है। धन वैभवमें या किसी संग प्रसंगमें जो ममता रहती है कि यह मेरा है, उसके साथ-साथ अनेक विपरीत ज्ञान भी रहा करते हैं अतएव उसको खेद रहता है, और सबसे विविक्त अपने आपके स्वरूपमें तुष्ट इस ज्ञानघन अंतस्तत्त्वमें अपनी स्वीकारता हो, हूं मैं यह, उसको कष्ट न आयगा।

(५२) **निजत्वनिर्णयपर भविष्य पर्यायोंकी निर्भरता**—मैं क्या हूं, इसके निर्णयपर ही मेरा भविष्य निर्भर है। इस देहको देखकर जो निर्णय बनाया है कि मैं यह हूं तो उसका भविष्य स्पष्ट है कि उसको संसार मिलते ही रहेंगे। जब शरीरको माना कि यह मैं हूं तो आखिर यह भी तो भगवान है, शरीरको चाह रहा है तो शरीर मिलते ही रहेंगे। अब यह बात दूसरी कि शरीर पानेमें कष्ट है, क्लेश है, पर इस प्रभुमें हम आप संसारियोंकी बात कह रहे हैं। देहको चाहा, देहमें लगाव रखा तो धड़ाधड़ देह मिलते चले जायेंगे और देहसे निराला ज्ञानघन अपने आपको सोचना कि मैं तो ज्ञानघन हूं तो उसका ज्ञाता द्रष्टा रहनेका भविष्य बन जाता है। ज्ञाता द्रष्टा रहनेमें आनन्द है और किसी अन्यरूप माननेमें या कुछ काम करनेके विकल्पमें इसको आनन्द नहीं है। वह उपाय बनावें जिससे निर्लेप रह सकें, जिससे ज्ञाता द्रष्टा रह सकें, जिससे अपनेको अकिञ्चन अनुभव कर सकें। सच्चा स्वास्थ्य इसमें है। किसीसे पूछो कि तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? तो वह उत्तर देता है कि बहुत अच्छा है। क्या अच्छा है? जरा हिन्दीमें बोलकर तो बताओ। क्या पूछा है? हिन्दीमें इसका कोई शब्द सोचना होगा। क्या कहा जाय जिसको स्वास्थ्य कहा है जो दूसरे पुरुषने समझा है और उत्तर दे रहा है कि मेरा स्वास्थ्य बहुत ठीक है। हिन्दीमें कोई शब्द हो तो बताओ। अंग्रेजीमें कहेंगे हेल्थ, उर्दूमें कहेंगे तन्दुरुस्ती, ऐसे ही हिन्दीमें भी कोई शब्द होगा जिसका हमें ध्यान नहीं, पर स्वास्थ्य शब्द कहकर पूछा गया है कि तुम्हें अपने आपमें बैठनेकी बात कैसी बन रही है? अपने आपमें ठहरनेका नाम स्वास्थ्य है। पूछने वाला यह पूछ रहा है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आप अपने आत्मामें स्थिर रहते हो या नहीं ? उत्तर देता है वह उल्टा—तन्दरुस्त हूं याने शरीरमें स्थित हूँ, शरीरसे वह अपनेको महान् समझता है, सम्पन्न समझता है। उत्तर उसके यों चल रहे, परन्तु परस्थ रहनेमें क्लेश ही क्लेश हैं और स्वास्थ्य होनेमें सुख है। वह स्व क्या है जिसमें स्थित होनेसे आनन्द मिलता है ? यह ज्ञानघन।

(५३) **ज्ञानघनकी दृष्टिमें कृतकृत्यताकी वृत्ति**—मुझमें अधूरापन हो तो मैं कुछ करने के लिए सोचूं, पर मुझमें अधूरापन है ही नहीं। जब मैं परमात्मा होऊँगा तब भी मैं कुछ बनकर न होऊंगा। जो हूं सो ही साफ प्रकट बन जाऊंगा। जैनशासनमें स्थापित मूर्तियोंका निर्माण बनाकर नहीं होता है, हटाकर होता है। किसी पाषाणमें कोई मूर्ति बनाना है तो उसमें कुछ जोड़ा नहीं जाता, किन्तु हटाया हटाया ही जाता है। छेनी हथौड़ासे पत्थर हटाया, यह हटाया वह हटाया, केवल हटाने हटानेका काम होता है, मूर्ति जो थी सो प्रकट हो गई उसमें कुछ नहीं बनाया गया, जैसे गोबर गणेश बनाते हैं इस तरह जैन शासनमें मूर्ति बनाने का रिवाज नहीं है, वहाँ हटाने हटानेकी ही पद्धति है, बनानेकी पद्धति नहीं है। बना हुआ तो था ही। जो पाषाणस्कंध प्रकट हुआ वह जो था अन्दरमें सो प्रकट हुआ। ऐसे ही प्रभु बननेके लिए, प्रभुता पानेके लिए हमें भी अपनेमें बनानेको कुछ नही पड़ा। हटाने हटानेका ही काम पड़ा है। मोह हटावो, राग हटावो, द्वेष हटावो, शरीर हटाओ, कर्म हटाओ, विकल्प हटाओ, बनानेका कोई काम नहीं पड़ा। जो स्वभाव है वही प्रकट हुआ। अब हटानेका ढंग यह है कि जो स्वभाव है उसका आश्रय करें तो ये सब हट जायेंगे और स्वभावको बनाना पड़ा हो, उसमें कुछ लगाना पड़ा हो ऐसी बात नहीं है। मैं परिपूर्ण हूं, ज्ञानघन हूं, अधूरा नहीं, ऐसा जो अपने इस परिपूर्ण स्वभावमें दृष्टि देता है और ऐसा अपनेको मानता है उसका कल्याण है। वही पुरुष कृतार्थ है। कृतार्थ उसे कहते हैं जिसके अर्थ कृत हो गए याने जो करनेका काम है वह कर चुका अर्थात् जिसको करनेके लिए कुछ नहीं पड़ा। यह कृतार्थता आती है अपनेको ज्ञानघन अनुभव करनेमें। वहाँ दीनताका अवकाश नहीं, अतृप्तिका अवकाश नहीं।

(५४) **चार दृष्टियोंसे आत्मपरिचयका पौरुष**—पदार्थकी पहिचान चार दृष्टियोंसे होती है द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव। जैसे एक इस पुस्तकका परिचय करना है तो जो दिख रहा है, जो पिण्डरूप है, जिसको हाथमें लिए हुए हैं, ऐसा भी देखा जाता है, यह हुई द्रव्य दृष्टि। यह पुस्तक कितनी लम्बी चौड़ी है, कितनी मोटी है, कितनी जगह घेरे हैं, इस दृष्टिसे भी पुस्तकका परिचय होता है, इसे कहते हैं क्षेत्रदृष्टि। यह पुस्तक किस ढंगकी है, पुरानी है अथवा नई है, कमजोर है अथवा पुष्ट है आदिक रूपसे भी पुस्तकका परिचय होता है, इसे

कहते हैं कालदृष्टि। और इस पुस्तकमें क्या गुण हैं उनको समझनेकी दृष्टि है भावदृष्टि। प्रत्येक पदार्थका परिचय चार दृष्टियोंसे होता है। तो आत्माका भी परिचय इन चार दृष्टियोंसे बनेगा। द्रव्यदृष्टिसे आत्मा शक्ति और पर्यायोंका पुञ्ज है। इसमें ज्ञान दर्शन चारित्र आनन्द आदिक अनन्त गुण हैं और अनन्त परिणमन हैं। उन सब गुण पर्यायोंका पिण्ड यों निरखा, यह हुई द्रव्यदृष्टि। क्षेत्रदृष्टि—यह जीव कितना फैला हुआ है, इसका कितना विस्तार है यह समझना क्षेत्रदृष्टिसे है वर्तमानमें जीव शरीर प्रमाण है। कोई दार्शनिक कहते हैं कि बटके बीज की तरह बहुत छोटा आत्मा है और वह आत्मा बड़े जोर बेगसे चक्कर लगाता रहता है, सो ऐसा लगता है कि सारे शरीरमें आत्मा है। तो कोई दार्शनिक कहता है कि आत्मा तो सर्वव्यापी एक है। जिस देहमें उसको छाया है लगता है मोहियोंको ऐसा कि आत्मा देह बराबर हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारकी धारणायें हैं। जैनशासन बताता है कि आत्माका खुद निजकी ओरसे कोई आकार नहीं है। वह तो एक ज्योतिस्वरूप पदार्थ है अनादिसे जिस शरीरमें गया उस उस शरीर प्रमाण आत्मा रहा और जब मुक्त हुआ तो जिस शरीरसे मुक्त हुआ उस शरीरके बराबर आत्मा था। शरीरसे अलग होनेपर न कोई कारण ऐसा है कि इस का आकार बढ़ा सके और न कोई कारण है ऐसा कि यह आत्मा इस प्रमाणको घटा सकें। तब जो देहसे मुक्त हुआ है, मुक्त अवस्थामें उस आकार प्रमाण है। खुदकी ओरसे क्या आकार है ? इसका निर्देश हो नहीं सकता इसे कहते हैं अनिर्दिष्ट संस्थान। तो यह आत्मा वर्तमानमें देह प्रमाण है। कुछ अवस्थायें होती हैं ऐसी कि जिन अवस्थाओंमें आत्मा देहसे बड़ा भी हो जाता है, उन्हें कहते हैं समुद्घात। शरीरको न छोड़कर बाहर भी आत्मप्रदेश फैल जायें ऐसी स्थिति होती है ७ घटनाओंमें। जैसे किसीको वेदना तीव्र हो रही है, वेदना सही नहीं जाती है, सीमापार बुखार चढ़ा है, ऐसी कोई वेदना हो तो उस वेदनामें यह आत्मा शरीरसे बाहर भी निकल जाता है, पर शरीरको छोड़कर नहीं, शरीरमें रहते हुए फैल जाता है जो शरीरसे बाहर भी पहुंचता है और कोई सुयोग हो कि उस अवधिमें कोई औषधि रखी हो वहां तक पहुंच गया। तो सम्भव है कि उसकी वेदना भी दूर हो जाती है। जब यह जीव कषाय करता है, क्रोध किया उस वेदनामें यह शरीरसे बाहर हो जाता है। तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घातमें आत्मप्रदेश देहसे बाहर हो जाते हैं। दंड, कपाट, प्रतर लोकपूरण, प्रतर, कपाट, दंड व प्रवेश ऐसे ८ समयोंमें केवली समुद्घात लोक पूरणमें एक समय ऐसा होता है कि प्रभु सारे लोकाकाशमें प्रदेशसे व्यापक हो जाता है। मारणांतिक समुद्घातमें जीव प्रदेश पहले जन्मस्थान तक फैल जाते हैं फिर वापस आकर मरण होता है। तो कुछ स्थितियां हैं ऐसी कि जिनमें यह आत्मा देहसे भी बाहर होता है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पर एक सद्दाके लिए यह ही कहा कि आत्मा देह प्रमाण है। क्षेत्रदृष्टिसे पहिचानें प्रदेशको छोड़कर पहिचानें और आत्मामें क्या परिणति चल रही है ? क्रोध, मान, माया, लोभ, इच्छा विषय कषाय क्या परिणति चलती है, उस परिणतिसे भी तो आत्माका परिचय होता है। यह ज्ञानी है यह अज्ञानी है यह परमात्मा है, यह संसारी है, इस तरहका जो परिचय हो रहा है यह होता है कालदृष्टिसे और आत्मामें क्या शक्तियाँ हैं ? सहज स्वभाव का भेद किया। पहिचाननेके लिए वहाँ गुण समझे गए। इसमें ज्ञानगुण है, दर्शन गुण है, चारित्रगुण है और आनन्दगुण है। शाश्वत गुणकी दृष्टि कहलाती है भावदृष्टि। इसी भावको अभेदरूपसे निरखा जाय तो वह है अभेदभावदृष्टि।

(५५) चार दृष्टियोंसे आत्मपरिचय करके चतुर्दृष्टिसे परे होकर अभेद भावदृष्टिसे परिचय करनेपर स्वानुभूतिका अवसर—आत्माकी पहिचान चारों दृष्टियोंसे है, पर अनुभव होगा तो अभेद भावदृष्टिके प्रतापसे होगा। जब इसको अनेकका विकल्प होगा, इसमें यह गुण है, इसमें यह पर्याय है, ऐसे विकल्पके समय स्वानुभूति नहीं जगती। परिचय करनेके लिए आवश्यक है। जब क्षेत्रदृष्टिसे परखा कि आत्मा इतना फैला हुआ है, प्रदेशका विस्तार दीखा। देखो परिचय है, जानकारी करें सही बात है, किन्तु इस प्रकारकी जानकारीके समय स्वानुभूति नहीं होती। कालदृष्टिसे भी जब जाना कि आत्मामें यह परिणति है, यह दशा है, यह अवस्था है। जानें सही भी बात है, परन्तु कालकृत भेदके प्रयोगमें आत्माको स्वानुभूति नहीं मिलती। भावदृष्टिसे जब परखा कि आत्मा अनन्त गुणोंका पिण्ड है, देखा तो शाश्वत भाव मगर भेदरूप देखा ऐसी स्थितिमें भी स्वानुभूति नहीं है, किन्तु वे सब गुण जिसको समझानेके लिए बताये गए जिस एक अखण्ड स्वभावके परिचयके लिए भेद निरूपणासे गुणों का कथन किया गया, उस भेद स्वभावको दृष्टिमें ले, इस भेदको विलीन कर दें और एक अखण्ड चैतन्यमात्र स्वभावकी दृष्टि होना तो वहाँ स्वानुभूति होती है। इसी कारण जो ग्रन्थों में जीवको चार विशेषताओंसे बाँधा है—जीव पदार्थ, जीव द्रव्य, जीवास्तिकाय और जीव-तत्त्व। बात तो कही गई जीवकी, पर जीवके साथ जो इतनी तरहके विश्लेषण लगाये गए उसका प्रयोजन भी यह ही है। यहां नामकरण और दृष्टियोंमें थोड़ा नामका भेद पायेंगे। जीव पदार्थ परखा जाता है द्रव्यदृष्टिसे। द्रव्यदृष्टिसे जाना गया जीवपिण्ड। जीवपिण्डका जो अर्थ है, जो गुणपर्यायोंके पिण्डभूत है वह परखा गया द्रव्यदृष्टिसे। क्षेत्रदृष्टिसे परखा गया जीवास्तिकाय, किन्तु उस अस्तिकायमें प्रदेशकी बात होती है और कालदृष्टिसे परखा गया तो कहलाया जीवद्रव्य। द्रव्य उसे कहते हैं जो अपनी पर्यायोंको प्राप्त करे, करता हुआ करे उसका नाम जीवद्रव्य है। द्रु धातुसे यह द्रव्य शब्द बना है। यह हुआ कालदृष्टिसे, और

भावदृष्टिसे कहलाया जीवतत्त्व । भेद अभेद चैतन्य चित्स्वरूप अनादि अनंत अचल स्वसम्वेद्य, चित्तचमत्कारमात्र जो ज्ञान स्पर्श द्वारा ही अनुभव किया जाय वह है जीवतत्त्व । तो जीव-तत्त्वकी परखमें स्वानुभूतिका अवसर है ।

(५६) **ज्ञानघनके रूपमें जीवतत्त्वका अनुभव**—वह जीवतत्त्व क्या है ? ज्ञानघन । वहां अन्य विकल्प नहीं, ज्ञान ही ज्ञान, समग्ररूपसे सर्वत्र बना हुआ है । सहज ज्ञानस्वभाव । जीवसे मेल करनेका, मिलाप करनेका, दर्शन करनेका, अन्य कोई उपाय नहीं । केवल यह ही उपाय है कि ज्ञानस्वरूपमें आराधना बनावें । मैं ज्ञानमात्र हूं । ज्ञानका ही उपयोग है, ज्ञान की ही तरंगें हैं, ज्ञानका ही प्रसार है । तिर्यक्में भी ज्ञान, ऊर्द्धतामें भी ज्ञान, प्रदेशमें भी ज्ञान, परिणतियोंमें भी ज्ञान । ज्ञानघन और जब बिगड़ा है तब भी क्या है ? ज्ञानकी ही तो कोई परिणति है । जब जीव सुख भोगता है तब क्या भोगता है । क्या आम, दाल, रोटी, चावल आदि इनको भोग सकता है यह जीव । उनसे तो संबंध ही नहीं बन सकता । आत्मा अमूर्त है । जैसे आकाशमें भोजनका स्पर्श नहीं होता ऐसे ही आत्मामें भोजनका स्पर्श नहीं होता । और भोगता क्या है ? ज्ञानकी परिणतिको भोगता है । ऐसी ही वर्तमान परिस्थिति है । ऐसा ही कर्मोदय निमित्त है कि जहां यह जीव अपने निरपेक्ष ज्ञानसे कुछ समझ नहीं पाता । समझना तो ज्ञानको ही है, लेकिन इन्द्रियसापेक्ष इनका ज्ञान चल रहा । इन्द्रियद्वारों से चल रहा । जानने वाली इन्द्रियां नहीं, किन्तु जब यह आवृत है, तो इसके जाननेका उपाय ये इन्द्रिय खिड़कियां हैं । जैसे कोई पुरुष एक हॉलमें खड़ा है तो बाहरकी चीजोंको वह खिड़कियोंसे ही देख पाता है । देखने वाली खिड़कियां नहीं हैं, देखने वाला तो पुरुष है, मगर वह खिड़कियोंसे बाहरकी चीजें देख पाता है, पर खुदके शरीरको जो उस भवनमें खड़ा है पुरुष, क्या वह खिड़कियोंके द्वारसे देखता है ? वहाँ खिड़कियोंकी अपेक्षा नहीं होती । खुद अपने शरीरको देखनेके लिए खिड़कियोंकी आवश्यकता नहीं । बाहरकी चीजोंको देखनेके लिए खिड़कियोंकी आवश्यकता हैं और जहां खिड़कियां ही नहीं हैं, भींत ही न हो, भींत ढा दे तो वह पुरुष सर्व तरहसे परपदार्थोंको देख सकता है तो आवरणकी भींत ढह गई प्रभुके, सो प्रभु सर्व ओरसे परपदार्थोंको निरखते हैं, और यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी छद्मस्थ इसका आवरण अभी हटा नहीं, तो यह परपदार्थोंको तो समझ पाता है इन्द्रिय मन द्वारा लेकिन खुदको समझता है यह इन्द्रिय और मनकी सहायता बिना । यद्यपि खुदको समझनेके लिए भी मनको सहायता हो जाती है, पर यह मन वहां तक सहयोग देता है जहां तक विकल्पकी सूक्ष्मता भी जिन्दा रहती है । बादमें मन काम नहीं करता । जिस समय यह आत्मा अपने ज्ञानस्वरूपको अनुभव में लेता है वहां मनका काम नहीं है । जैसे कोई पहरेदार किसी दर्शनार्थीको राजासे मिलाने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चलता है तो पहरेदार वहाँ तक तो उसके साथ जाता है जहां तक राजा दिखता नहीं। पर जहाँ राजा दिखने लगता वहाँसे पहरेदार इशारा भर करता है कि वह बैठे हैं राजा साहब जाओ, और पहरेदार लौटकर अपनी ड्यूटीमें आता है। वह दर्शनार्थी अकेला ही राजाके निकट जाकर मिलता है, ऐसे ही यह मन पहरेदार इस दर्शनार्थी उपयोगको वहाँ तक ले जाता है जहाँसे इस परमात्मस्वरूपको निरखनेका संकेत बनता है, वहाँके बाद मानो यह मन कहता है कि अब आप जाइये और इस परमात्मस्वरूपसे मिलिए। यह उपयोग तो मिलने लगता है, स्वानुभूति करता है और यह मन वहाँसे निवृत्त हो जाता है। तो मिलनमें क्या मिला, किससे मिला, कौन मिला ? यह ज्ञानघन परमात्मस्वरूप अनुभव भी किसका हुआ ? इस ज्ञानघनका। ज्ञान ही ज्ञान, ठोस ज्ञान ही ज्ञान ज्ञानमें रहा ऐसा वहाँ अनुभवमें आया।

(५७) **पौरुषके कर्तव्यका स्मरण**—हम आप लोगोंके लिए अभी कितना चलना है, कितना पौरुष करना है सो समझिये। और वह पौरुष है ज्ञानका। अन्य जो कुछ भी साधन बताया गया है, लोगोंने कहा है प्राणायाम बनाया, योगसाधन या अन्य बातें यह एक मन पहरेदारको प्रसन्न करनेके लिए है। इस ज्ञानघन परमात्मस्वरूपके दर्शन करनेमें यह क्रिया समर्थ नहीं है। भला पहरेदारको प्रसन्न करना भी तो कभी आवश्यक होता है। इतनी ही बात उन बाहरी साधनोंमें होती है। इतना प्रयत्न होनेपर भी अगर मनमें वह कला नहीं है तो दर्शन करानेमें समर्थ नहीं है और कला है तो दर्शन करा सकती है। वह कला आती है ज्ञानकी सुगंधिसे। तो हर स्थितियोंमें भी ज्ञानकी ही मुख्यता रहे। ज्ञान द्वारा ज्ञानमें, ज्ञान के लिए ज्ञानको ही इस ज्ञानने जाना यह स्थिति है स्वानुभवकी। कहाँ जाना ? ज्ञानमें। घर में, देहमें, आधार वहाँ ज्ञान ही है। अन्य आधार क्या मतलब ? सबका वहां अत्यन्ताभाव है। किसी भी आधारभूत बातका यहां सम्बंध ही नहीं है। ज्ञान है, स्वयं है। स्वयं स्वयंमें है। कहाँ स्वानुभूति की ? ज्ञानमें। और जाना किसको ? इस ज्ञानको ही। और जाना किसने ? इस ज्ञानने ही। और क्यों जाना ? इस ज्ञानके लिए। उसका और कोई प्रयोजन नहीं। बस यह जानना जानना ही बना रहे, इसके लिए ही स्वानुभूति है। इस प्रकार जहां यह अभेद षट्कारकपना देखकर परखा जाता है तो स्वानुभूतिका लक्षण विदित हुआ, लेकिन स्वानुभूतिमें यह षट्कारकता नहीं पड़ी हुई है। यहां ही हम समझते हैं। वहां तो एक अभेद अनुभूति है। अपनेको निरखना है।

(५८) **ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वकी सुध बिना संसारभ्रमण**—अपने आपमें अपनेको ज्ञानघन, ज्ञान ज्ञानसे ही रचा हुआ यह आत्मा है। रचने वाला कोई नहीं, अकृत्रिम है, अनादि है, फिर भी क्या है वहाँ ? किससे रचा हुआ ? अनादि सही, समझना तो होगा। उसमें

ठोस चीज क्या है ? वह है ज्ञानस्वरूप, जानना। कितना विलक्षण ज्ञानतत्त्व है कि जिस जाननको पकड़े कौन ? कैसा एक अद्‌भुत पदार्थ है यह आत्मा कि जो निरन्तर जाननस्वभाव रखता है और जाननकी वृत्ति करता है, इसी कारण यह आत्मा समस्त पदार्थोंका सम्राट है, है यह खुद अद्‌भुत विभव सम्पन्न, किन्तु इस सम्पन्नताकी सुध नहीं है इसलिए बाहर बाहर डोलना पड़ता है। बाहरी पदार्थोंमें उसको अनुग्रह विग्रह करना पड़ता है। अनुभव करना होगा कि मैं ज्ञानघन हूं। मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं। अधूरापन होवे तब तो कुछ आवश्यक है, यहाँ तो अधूरापन है ही नही। सबसे निराला ज्ञानसे घन। इसको अब क्या आवश्यकता है कुछ भी बातकी ? ऐसा यह परिपूर्ण मैं ज्ञानतत्त्व हूं, यह बोध कि वहाँ कृतार्थता प्रकट होती ही है। समस्त अर्थ कर लिया गया, समस्त प्रयोजन सिद्ध कर लिए गए ऐसी स्थिति होती है। मैं क्या हूं, इसकी समझपर सारा भविष्य है। एक उक्ति अन्य दार्शनिकोंके यहाँ प्रसिद्ध है कि यहाँ ब्रह्म एक है, लेकिन जहाँ यह भाव हुआ—'एकोहंबहुस्यामि' याने मैं एक हूं लेकिन बहुत हो जाऊँ, ऐसी जहाँ वासना जगी कि यह बहुत बन गया, अनेक जीव बन गया। जिसने जो बात सोची उसे मूलतः मिथ्या नहीं कह सकते, पर कुछ हेर फेर हो जानेसे बात कहींकी कहीं प्रसिद्ध हो गई। यह भी बात सही है। सभी लोग अपनी-अपनी देखें, मैं अद्वैत हूं, अकेला हूं, एक हूँ। स्वभावको निरखें—मैं एक हूँ, फिर यह बहुत क्यों बन रहा है ? यह बहुत रूप विकल्प करता है तो बहुत बनता है, अपनेको एकरूप अनुभव नहीं कर पाता सो 'बहु स्यामि बहु स्यामि' इसकी वृत्ति चलती है। तो अपने मूल एकत्वको पहिचानें तो ये सारी विषम सृष्टियाँ समाप्त हों, चारों ओरके दुःख समाप्त हों। वह एकत्व क्या है ? अपने को ज्ञानघन अनुभव करनेमें पा लेना। जो वजनदार हो, ठोस हो वह हिलता डुलता नही, उसमें अस्थिरता नहीं होती है। लोहेका गोला जहाँ है तहां पड़ा है, यह तो है एक पौद्‌गलिक वजनकी बात, लेकिन जहां भावका वजन आ जाय, मैं ज्ञानघन हूं, ज्ञानज्ञानसे परिपूर्ण हूं, ऐसा ज्ञानघनपना उपयोगमें हो तो यह भी स्थिर रहेगा, चलायमान न होगा जो भी चलायमान हो रहा है जीव वह ज्ञानघनके अनुभव बिना हो रहा है।

(५६) **ज्ञानघनकी दृष्टिमें ज्ञानानुभूतिका अभ्युदय**—मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानघन हूं, ज्ञान ज्ञान ही हूं, ज्ञानसिवाय कुछ नहीं हूं। निरन्तर यह भावना चले तो उसका फल यह है कि यह मात्र ज्ञान परिणमन ज्ञान परिणमन ही करता रहेगा। जैसी दृष्टि करे, जैसा अन्दरमें भाव बनाये वैसा ही व्यवहार चलता है। एक सेठका एक बाबूके साथ कोई मुकदमा लग गया। कई पेशियाँ हो गई। जाना पड़ता था रेलगाड़ीसे ३-४ स्टेशन दूर। तो वह बाबू परेशान हो गया तो उसने एक दिन एक उपाय रचा कि जो तारीख दी थी जिस पर फैसला सुनाना था

उस दिन गाडीके समयसे पहले एक तांगे वालेसे मिल आया और उसे रुपया-दो रुपया देकर समझा दिया कि देखो अमुक सेठ यहाँ आयगा, उससे पैसे ठहराना नहीं, जो दे सो लेकर अपने तांगेमें बैठा लाना। उससे यों कहना कि सेठ जी आज तुम्हें क्या हो गया है ? आज तुम्हारी तबियत कुछ खराब जैसी दिखती है, तुम्हारा चेहरा गिरा हुआ है...., यही बात बाबू जी ने कुलीसे कह दी और यही बात टिकट बांटने वालेसे भी कह दी। जब सेठ स्टेशनपर पहुंचा तो वहां सबसे पहले तांगे वाला मिला, उसने सेठको अपने तांगेमें बैठाया और सेठजी से उसी तरह कह दिया जिस तरह बाबू जी ने कहनेको कहा था, कुलीने भी वही बात कही, टिकट बांटने वाले ने भी वही बात कही। जब सभीके मुखसे सेठने यही बात सुनी तो सेठने अपने ऐसे भाव बना लिए कि वह बीमार हो गया और वहींसे घर वापिस लौट आया। उस दिन की तारीखमें न पहुंचनेसे सेठ मुकदमा हार गया और बाबूजी का काम बन गया। तो अपने आपके भीतर अपनेको जिस तरहका देखा उस तरहके व्यवहारकी प्रेरणा मिलती है। अन्य बहु रूपमें देखनेसे तो लाभ है नहीं। एक अपनेको ज्ञानघन रूपमें परखनेसे लाभ मिलता है। ऐसा अनुभव हो कि मैं ज्ञानघन हूं। सर्वत्र ज्ञान ज्ञानसे ही रचा हुआ हूं ज्ञानघन। मेरा न परलोक न इहलोक, न वैभव, न कुटुम्ब, न संग, न परिग्रह। मेरा सर्वस्व यह ज्ञान भाव ही है, ऐसा अनुभव करने वाला पुरुष कृतार्थ हो जाता है और मुक्तिका पथिक बनता है।

(६०) जिज्ञासा और आनन्देच्छा होनेपर भी पूर्ति न होनेका कारण—जगतके सभी जीवोंको, हम आपको दो प्रकारकी वाञ्छायें मुख्यतया जगती हैं। एक तो ज्ञान खूब हो, पूरा हो और दूसरा आनन्द मिले। इन दोनोंमें से मुख्य है आनन्द। फिर भी करीब-करीब समानतासे दो बातें जीवोंमें प्रकट होती हैं—(१) ज्ञान खूब हो, (२) आनंद खूब हो। बच्चेसे लेकर वृद्ध तक कभी कोई नई चीज सामनेसे गुजर रही हो तो उसके सम्बधमें जाने बिना चैन नहीं पड़ती कि क्या है ? जाननेकी इच्छा होती है और आनन्द पानेकी इच्छा होती है मगर न सब जान पाते न आनन्द प्राप्त कर पाते, उसका कारण क्या है और कैसे यह बात प्रकट होती है, इस बातका समझना कितना आवश्यक है कि आप अनुभव कर रहे होंगे कि जब ये दो इच्छायें पायी जाती हैं तो इन दो बातोंकी पूर्ति होना आवश्यक तो है। हाँ अब विचार करें कि क्यों नहीं कि ये पूर्ण हो पाते ? हम बाह्य चीजोंमें अपना उपयोग लगाते हैं, राग करते हैं, मोह रखते हैं तो हमारे ज्ञानकी सीमा बन जाती है और यह ज्ञान द्वारा प्रकट नहीं हो पाता। बाहर उपयोग लगानेसे, राग करनेसे, लगाव रखनेसे ज्ञानका अभ्यास बन जाता है। उसको ही जानें, इसलिए ज्ञानकी पूर्णता नहीं होती। अगर बाहरी पदार्थोंमें उपयोग न फंसायें, मोह रागद्वेष न करें और एक ज्ञानघन ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही

उपयोगको जोड़ा जाय तो यहाँसे ऐसा प्रताप प्रकट होता है कि विवश होकर जगतके सब पदार्थोंको ज्ञानमें आना पड़ता है। तो ज्ञानकी जो पूर्णता नहीं होती उसका कारण यह है कि हम बाहरी बातोंमें ज्ञानको, उपयोगको जोड़ करके हम उसकी सीमा बनाये रहते हैं—दूसरी चीज— आनन्द क्यों नहीं मिल पाता ? उसका कारण है कि आनन्द जहाँ नहीं है वहाँ हम बल लगाते हैं, बाह्य वस्तुमें हमारा आनन्द नहीं, फिर भी हम बाह्य वस्तुमें उपयोग जोड़ते हैं आनन्दकी बात रखकर। जहाँ जो चीज नहीं उसके अवलम्बनसे वह कैसे प्रकट होगा ? जैसे कोई कुछ भी प्रयोग करे, पर बालूसे तेल नहीं निकाला जा सकता, इसी प्रकार बाह्य वस्तुमें आनन्द नहीं और दूसरे जीवोंमें आनन्द तो है, पर वह आनन्द उनका उनके लिए है।

(६१) एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें प्रभाव न जानेका कारण वस्तुसीमा— वस्तुकी एक सीमा होती है कि कोई पदार्थ अपनी सीमाको तोड़ नहीं सकता तब ही तो उनकी सत्ता है। जगतमें इतने पदार्थ दिखते हैं ये अब तक हैं क्यों ? ये चले आये इनकी सत्ता क्यों बनी चली आयी कि ये सब अपनी ईमानदारीपर रहते हैं। कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमें अपनी शक्ति, परिणति, अपने गुण, अपना भाव, अपना प्रभाव, कुछ भी नहीं दे पाते। यद्यपि ऐसा लगता है कि प्रभाव तो पड़ता है एकका दूसरेपर और खासकर विज्ञानवादमें तो यह पद-पदपर बात दिखती, अमुक चीजका सम्बंध किया तो दूसरेपर यह असर हुआ। वस्तुतः देखा जाय तो किसी पदार्थका दूसरे पदार्थपर असर नहीं पड़ता, जो असर हुआ है वह जिसमें परिणति हुई है उसका ही वह असर है, पर उस असरमें निमित्त कारण दूसरा है। उसको जल्दीकी भाषामें ऐसा बोल दो तो कोई हानि नहीं कि इस पदार्थका इसपर असर पड़ा है। पर जब विश्लेषण करेंगे तो किसी पदार्थका प्रभाव किसी दूसरेपर नहीं पड़ता। इस बातको मोटे रूपसे समझनेके लिए एक बहुत मोटा दृष्टांत ले लो। बात सब जगह घटित हो जायगी। जैसे किसी देहातीको न्यायालयमें जाना पड़े, कभी गया न था। सुन रखा था कि कचहरी बड़ी कठिन चीज होती है। वहाँ एक जज होता है, लोग काँप जाते हैं। जज न जाने क्या-क्या पूछता है। सो वह देहाती कचहरीमें पहुंचा तो डरके मारे उसने अपनी धोती बिगाड़ ली। तो बताओ जजका वह प्रभाव है क्या ? अरे वह प्रभाव जजका नहीं। उस देहातीने स्वयं ही अपने अन्दर उस प्रकारका भाव बनाया, उस प्रकारका अपनेमें असर बनाया, वह प्रभाव यदि जजने डाला होता तो वहाँ रहने वाले वकील अथवा जजके मित्र लोगोंपर भी उस प्रकारका असर होना चाहिए था, पर ऐसी बात तो वहाँ नहीं देखी जाती। तो ऐसी ही बात सर्वत्र समझो कि दो पदार्थोंका जहाँ सम्पर्क हुआ और वहाँ एक पदार्थकी शक्ल-सूरत, प्रभाव-असर बदल जाय तो वह असर उसका ही असर है। उसमें निमित्त होता है दूसरा।

तो ऐसे ही एक माध्यमसे सारी बात समझते हुए कि मैं दूसरेको सुखी नहीं करता। दूसरा सुखी होता है वह अपने प्रभावसे उसमें मैं निमित्त होता हूं। मुझको कोई सुखी नहीं करता। मैं सुखी होता हूं अपने आपके परिणामसे। तो जहाँ सत्य बोध होता है कि मेरा आनन्द आनन्दनिधान मेरे ही सहज स्वभावके आलम्बनसे प्रकट होता है वहाँ निजतत्त्वके आश्रयसे आनन्द प्रकट होता है।

(६२) प्रत्येक परिस्थितिमें आत्मसाधनाकी आवश्यकता—

भैया! बाह्य वस्तुके आश्रयसे आनन्द नहीं होता। कैसे आये आनन्द ? बाह्य पदार्थों पर ही दृष्टि रखते आये और दुःखी होते आये। भैया! माना कि लोगोंमें रहते हैं, समूहमें रहते हैं, काम अनेक करने पड़ते हैं, यशके माफिक, पोजीशनके माफिक व्यवहार रखना पड़ता है, गृह-व्यवस्था ऐसी ही है. तो ये सारे काम करें तो सही, किन्तु अपनेपर दया करके एक-आध घंटा अथवा एक घंटा समय अपने हितके लिए तो रखें। जहाँ अपनेको बड़ा नम्र बनाना, सब जीवोंको क्षमा करना, अपने आपको सरल बनाना, अपने आपको अपने आपके अभिमुख करना, किसी भी बाह्य पदार्थमें लालच न जगे। अपने भीतर ज्ञानप्रकाशको समझना, इन बातोंके लिए कुछ समय भी न दें और बाहर-बाहरकी बातोंमें ही लगे रहें तो आत्माकी बेसुधीमें लाभ पायेंगे कुछ नहीं, केवल क्लेश क्लेशकी संतान चलती रहेगी। तो आनन्द पानेके लिए यह आवश्यक है कि सत्य बोध हो और आनन्दस्वरूप जो निज आत्माराम है उसका आलम्बन हो। देखिये चाहते हैं ना दो बातें—ज्ञान पूर्ण हो और आनन्द भी पूर्ण हो। तो कितनी सहूलियत है कि यह आत्मा स्वयं ज्ञान और आनन्दसे ही रचा हुआ है, जिस बातको हम चाहते हैं उससे ही रचा हुआ आत्मा ही, स्वरूप ही है, दूसरा कुछ स्वरूप ही नहीं आत्माका। तभी तो कोई लोग कहते हैं कि आनन्द 'ब्रह्मणोरूपं'। तो कोई कहते हैं कि जो ज्ञान है वह ही ब्रह्मका स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द हम चाहते हैं और यह बड़ी सुविधाकी बात है कि हम आप सब ज्ञानमय हैं, आनन्दमय हैं, पर आश्चर्यकी बात यह है कि ज्ञानमय होकर भी हम इस ज्ञानस्वरूपको नहीं जान पा रहे, आनन्दमय होकर भी हम आनन्द पानेके लिए बाहरी बातोंकी आशा करते फिरे। थोड़ा समय अपने जीवनमें सबसे निवृत्त होकर आधा घंटेके लिए ऐसा उपेक्षित होकर जिसे यों कहो कि उपचारसे मानो मुनि हो गए। कुछ नहीं सोचना, कोई लगाव नहीं। देहपर पहने हुए कपड़ोंका भी ध्यान नहीं, देहका भी ध्यान नहीं होता। भीतरी एक ज्ञानप्रकाशको समझनेके लिए ही लिया गया हो ऐसी दृष्टि थोड़ी जरूर बनानी चाहिए रोज, तो कुछ अपने आपके स्वरूपका प्रवर्तन होगा। और इन असार इन्द्रियसुखोंमें ही प्रेम रहा तो इस आत्माकी भलाई नहीं है।

(६३) **निरंतर मरणकी स्थितिमें निरंतर समाधिकी आवश्यकता**—भैया ! आयु निकल रही है, जीवन चला तो कौन बूढ़ा नहीं हुआ ? बूढ़ा होनेपर जब देह शिथिल हो जाता, कुछ क्रिया नहीं कर पाते तो वहाँ एक भीतरमें बहुत कषाय जगती रहती है, क्या उसका कष्ट नहीं होता है ? ऐसे भावी कष्टसे बचनेके लिए उपाय क्या है सो बताओ ? यहीं के कष्टको बात कह रहे हैं। यदि ज्ञानबल है, कषाय नहीं जगी, उसका उपाय पहलेसे कर लिया होता कि वस्तुका स्वतंत्र सत्य स्वरूपका अभ्यास बनाया होता तो वहाँ समतासे रह सकते थे। हम आपका समताका घात हो रहा है यहां यह मरण क्षण-क्षण हो रहा है, इसे कहते हैं भाव मरण। प्रतिक्षण आयुके निषेक खिर रहे हैं यह हो रहा आवीचि मरण। जहाँ शरीरसे भी विदा हो गए वह है भवमरण और जहाँ अहर्निश क्षण-क्षण रागद्वेष मोहमें उपयोग चल रहा हो वहाँ आत्माका जो विशुद्ध चैतन्य प्राण है उसका जो घात चल रहा है वह कहलाता है भावमरण। और आवीचिमरणकी अपेक्षा भी देखें तो जो आयुके क्षण गए वे मरण ही तो कहलाये। उतनी आयु पुनः तो नहीं आ सकती। तो ऐसा तो मामला है। सामनेकी बातें हैं तिसपर भी इन्द्रियसुखमें रति रहे और आत्माकी सुध न करें तो यह अपने लिए कितनी अहितकर बात है। जगतमें जो कुछ दिखता है वह सब विनाशीक है। उसके लगावसे मेरेको लाभ न मिलेगा और मेरेमें ऐसा जो गुजर रहा है—देह होना, पुरुष होना वह भी विनाशीक है। उनको बनाये रहनेमें भी लाभ नहीं है। एक अविनाशी जो आत्माका सहज स्वरूप है, सत्स्वरूप है उस अविनाशी स्वरूपकी दृष्टि जगे तो मैं अमर होऊँगा। अमर तो है ही यह जीव, पर अमरत्वकी सुध नहीं है इसलिए मरणका क्लेश है। जहाँ अपने अविनाशी स्वरूपको जाना वहाँ विश्वास हो गया कि मैं अमर हूं।

(६४) **अमृत ज्ञानतत्त्वकी सुधमें मरणकी निरापदता**—कोई किसी बड़े अफसरका जब तबादला होता है एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें या कहीं भी तो उसके लिए कितने साधन सरकार देती है ? एक रेलगाड़ीका डिब्बा, एक मालगाड़ीका भी डिब्बा, चक्की, चूल्हा, गाय, भैंस आदिक ले जाय, दसों नौकर सामान रखने वाले, जहां उतरेगा वहां दसों नौकर पहलेसे तैयार हजारोंकी संख्यामें जनता, तो ऐसे आफीसरका तबादला होनेमें कौनसी दिक्कत होती है ? बस मोटरसे उतरकर रेलके डिब्बेमें बैठना भर है, किसी प्रकारकी कोई उलझन ही नहीं है, रिजर्व डिब्बा है, जहां गया उतर गया, क्या दिक्कत आयी ? पहुंच गया। और किसी छोटे क्लर्कका जब तबादला हो तो उसको कितनी दिक्कत ? जहां पहुंचेगा वहां अपना सारा सामान किस तरह ले जायगा ? बड़ी मुश्किलमें पहुंचता है। उसे ठहरनेको कहीं जगह नहीं मिलती, वह जगह ढूँढ़ता फिरता है, अनेक परेशानियां उसके सामने आती हैं जिन्हें आप सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लोग जानते हैं। ऐसी ही बात समझिये कि किसी ज्ञानी आत्माका जब तबादला होता है याने एक देहको छोड़कर दूसरे देहमें जानेकी बात होती है तो तबादलाके समय ज्ञानी जीवको कोई दिक्कत नहीं होती। कारण कि वह जान रहा है कि मेरा सब कुछ वैभव मेरेसे अभिन्न है। मैं जा रहा हूं तो ऐसा सारा वैभव मेरे साथ ही है। पूर्ण वैभव वाला यह मैं यहांसे यहां बैठ गया। दूसरी जगह पहुंच गया। जानेमें भी क्या दिक्कत ? एक-दो-तीन समयमें सारा रास्ता पार हो जाता है। जहाँ पहुंचा वहां भी विभव सम्पन्न। तो जो अपने वैभवको निरखता है उसको उसकी बदलके समय कष्ट नहीं होता और एक अज्ञानी पुरुष तबादलेके समय, मरणके समय कितना संक्लेश करता है ? हाय मुश्किलसे हमने कमाया, घर बनाया, वह छूट रहा है। जो इज्जत पायी, जो ये पार्टीके लोग हैं, मित्रजन हैं, परिजन हैं ये सब छूट रहे हैं। जिसकी दृष्टिमें इस तरहकी नाना कल्पनायें होती हों उसे कितना कष्ट है ? तो कष्ट कोई दूसरा नहीं देता हम आपको। हम ही स्वयं कल्पनायें करते हैं और दुःखी होते हैं, सुखी होते हैं। तो वह सब अपने आधीन बात है।

(६५) **दुःखपूर्ण संसारमें कष्टसहिष्णुतासे ही विजयकी संभावना**—यहीं देख लो—प्रायः सभी लोग अपनेको बड़ा दुःखी अनुभव करते हैं। कोई सोचता है कि मेरेको हजारोंका नुक्सान पड़ गया रोगका, शोकका, वियोगका, अनिष्ट संयोगका। कुछ न कुछ कल्पनायें करके प्रत्येक मनुष्य ऐसा अनुभव करता है कि मेरेको बड़ा दुःख है, लेकिन दृष्टि पसारकर देखो तो क्या दुःख है ? अपनेसे अधिक दुःखी कितने जीव संसारमें पड़े हुए हैं ? जरा निगाह तो करो ? क्या उनमें जीव ही नहीं समझते ? कितना उनको कष्ट है ? रोगी हैं, बोल नहीं पाते, लकवा लगा है, खानेका भी इन्तजाम नहीं, औषधिका भी इंतजाम नहीं, घरके बच्चे भी भूखे रहते हैं, यों कितनी ही प्रकारकी कठिन स्थितियों वाले लोग पाये जाते हैं, जरा उनपर दृष्टि तो दें और अपने आपमें कुछ सन्तोष लावें। मेरेको कोई दुःख नहीं, दुःखसे घबड़ाने वालेको दुःख छोड़ेगा नहीं। कभी भी भगवानसे प्रार्थना करते हुएमें मेरेको दुःख न हो, ऐसी माँग करनेमें सार नहीं। मांगनेसे कहीं दुःख मिटता नहीं। और, मेरेमें दुःख न हो ऐसी कोई आशा रखे तो दुःख न हो ऐसा होता नहीं संसारमें। इसके बजाय ऐसी भावना बनाये कि मेरेको ऐसा ज्ञानबल जगे कि मैं सारे कष्टोंको समतासे सह सकूं इसमें तो पार पा लेंगे, मगर मेरेको कोई दुःख न आये इसमें पार नहीं पा सकते। और, पार तो इसमें भी पा सकते, मगर इसके लिए ज्ञानबल चाहिए। मेरेको दुःख ही नहीं, मेरे स्वरूपमें कष्ट ही नहीं। कोई यों उल्टा चलता है तो चलता है, उसकी क्या है, मेरेको उससे क्या प्रयोजन ? जगतमें किसीकी कुछ भी प्रवृत्ति होती है तो उसका ज्ञाता द्रष्टा रह जाय। इतना अपूर्व बल हो तो दुःख ही नहीं।

Version 1

कोई बात कहता है ऐसी स्थितिमें कष्टसहिष्णुताकी बात तो आनी ही चाहिए। कष्ट हर एक पर आयेंगे, जब तक यहांपर सम्बंध बना है तब तक कष्ट सभीपर आयेंगे। परिवारमें जितने लोग हैं इनका वियोग होगा कि न होगा ? खुदका भी वियोग होगा कि न होगा। अवश्यंभावी है, किसीका पहले होता, किसीका बादमें होता। तो जब वियोग होगा तब यह कष्ट मानेगा कि नहीं। कष्टकी बात इस लोकमें लोग मानते ही हैं। कौन पुरुष ऐसा है कि जिस पर कष्टकी सम्भावना नहीं, जिसपर सम्भावना नहीं वह साधु वास्तवमें अगर विरक्त है, ज्ञानमें लीन है तो उसे कष्ट नहीं है, बाकी तो इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, शारीरिक वेदना आदि अनेक प्रकारकी आशायें, ये सब कष्ट पद पदपर मंडरा रहे हैं। ऐसी स्थितिमें जब तक हम कष्टसहिष्णु बननेका प्रयास न करें तब तक हम अपने जीवनमें प्रगति ही नहीं कर सकते।

(६६) **सुख दुःखमें समतासे प्रगतिकी संभवता**—भैया ! जो दुःख आये सो आये, उसको गहरा नहीं बनाना है। हो गया दुःख, क्या हुआ, कुछ बाह्य पदार्थकी परिणति ही तो हुई, उसकी उपेक्षा करें और अपना जो लक्ष्य बनाया है जीवनका उसमें आगे बढ़ते जायें जीवनका लक्ष्य क्या ? मानो कुछ पोजीशन बनाया, कीर्ति बनाया, धन वैभव बढ़ाया। ठाठ बाट बढ़ाया, तो इस लक्ष्यसे मिलता क्या ? आत्माको कहाँ शान्ति मिलती है ? मरणके बाद आत्मा इनमेंसे ले क्या जायगा ? जैसे पहले भवोंकी बातें इस भवमें कोई मददगार नहीं हो रही। इस भवकी भी कोई बात आगे भवमें मददगार न होगी। कोई सोचता होगा कि आगेकी कौन जाने, भव मिलता कि नहीं मिलता, परलोक है कि नहीं। तो थोड़ा भी युक्ति से सोचे कोई कि जो है उस है का समूल नाश हो कैसे सकता ? कोई भी दृष्टान्त न मिलेगा अजीव पदार्थोंमें न मिलेगा। कुछ भी है वह तो रहेगा, चाहे किसी शक्लमें रहे, किसी पर्यायमें रहे। जो है उसकी शक्ल मिट कैसे सकती है ? है का न कैसे बन जायगा ? तो अपने आपके बारेमें भी सोचूं कि मैं हूं या नहीं। हूं हूं तो सब बोलते हैं। मेरा सत्त्व है तब ही तो दुःख सुख सब लगे हुए हैं, तो मेरा जब सत्त्व है, मैं हूं तो फिर मिट कैसे सकूंगा ? इस परिवारको छोड़नेपर मैं तो रहूंगा कुछ। क्या स्थिति होगी ? उसके लिए मिसाल यह है कि जो वर्तमानमें देह दिखता है वह मिसाल है। परलोकका अभाव नहीं है। जब बच्चा तुरन्त पैदा होता है तो भले ही इतना प्रयास कोई माँ करती है कि अपने स्तनपर बच्चेका मुख लगा ले, लेकिन उसे गुटकना, भीतर ले जाना यह तो नहीं सिखा पा रही वह माँ। क्यों ऐसा कर लेता है वह बच्चा कि पूर्वभवमें भी था, उसे अभ्यास बना हुआ था क्षुधा मेटनेका। वह अभ्यास उस समय काम दे रहा। कहीं कहीं जातिस्मरणकी बात सुनी जाती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। होता है जातिस्मरण, उससे सिद्ध है कि परलोक है। मुख्य बात तो एक यह है कि जो सत् है उसका कभी विध्वंस नहीं होता। किसी भी वैज्ञानिकसे अथवा विद्वान्से पूछ लो। हो कैसे सकता कि जो है वह कुछ रहे नहीं। तो जब मेरा सत्त्व है, मुझे सदा रहना है तो जरा अपने भावीकालकी बात विचारें कि मुझे अच्छे ढंगसे रहना चाहिए। इस जीवनमें भी लोग क्या करते कि पहले तो सब कष्ट सह-सहकर जायदाद बना लें, फिर आरामसे खाते हुए रहेंगे। इतना पौरुष करते हैं, इतना कष्ट सहते हैं एक थोड़ी सी जिन्दगीमें आरामसे रहनेके लिए ये सब प्रयत्न करने चलते हैं। तो भला अनन्तकाल तक सुखी शान्त रह सकें इसके लिए भी कोई उद्यम बनानेकी बात मनमें आती कि नहीं। मोहको ढीला करना पड़ेगा, राग-द्वेषसे उपेक्षा करनी होगी। अज्ञानसे मुख मोड़ना होगा और आत्मबोधमें आना होगा नहीं तो जैसे दुःख भोगते आये वैसे दुःखोंकी संतान रहेगी। आत्माका हित हो नहीं सकता।

(६७) आध्यात्मिक आन्तरिक उद्यमसे आत्मलाभ—

जो भीतरमें प्रयोग बनायगा उसको लाभ मिलेगा, यह बात किसीसे कहने सुननेकी नहीं है। भीतरमें सोचना और अपने आप ही अपनेमें अमल करनेकी बात है। यह सब गुप्त ही बात है। कुछ दिखानेकी बात नहीं है। जो भीतर अपने ज्ञानबलसे अपना यह बोध कर सका, उसमें रम सका, उसमें तृप्त रह सका उस जीवको शान्ति प्राप्त होगी। उसके लिये संयमसे रहो, इन्द्रियोंके वशमें न होवो। इन्द्रियको वशमें रखो। वचनोंका संयम, मनका संयम, सबका हित विचारना, किसीको विरोधी न समझना। जब हम अपने अन्तर्व्योहारको सही बनायेंगे तो यह ज्ञान भोला सीधा बाबा, कहते हैं ना भगवानको भोले बाबा, सचमुच भगवान भी भोला है और अपना आत्मस्वरूप भी भोला है। भोला उसे कहते हैं जिसमें टेढ़ न हो, कपट न हो, सीधा-सादा हो, सरल हो, स्पष्ट हो, ऐसे ही प्रभु हैं, ऐसा ही अपना स्वरूप है, अपने आपमें विराजमान भोले बाबाकी सुध लें और ऐंठ, कपट, मायाजाल, इन सारी बातोंकी आहुति करें और कुछ क्षण तो अपने ज्ञानदेवतासे मिलनेका प्रयास तो बनाया करें। निरन्तर थोड़े क्षण भी प्रयास बना रहेगा तो बाकी क्षणोंमें भी आनन्द रहेगा और अपने आपका उद्धार भी होगा। तो एक निर्णय बनावें कि मेरा कुछ नहीं है, देह भी मेरा नहीं, परिवार भी मेरा नहीं, धन-वैभव भी मेरा नहीं, मेरा यहाँ कुछ भी नहीं। मेरा तो केवल एक मेरा आत्मा है। वही प्रिय है, वही ध्यानके योग्य है। वही शरण है, वही अवलम्बन है, इसका यह ही मात्र है। मेरा मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है। ऐसी एक भावना हो तो समाधिभाव बना। समाधि उसे कहते हैं कि जहाँ आधि शान्त हो जाय। मानसिक क्लेश न रहे, ऐसी स्थिति बने और उसी स्थितिके निरन्तर अभ्याससे हमारा क्लेश दूर होगा। उसके लिए चाहिए—रोज घंटाभर ज्ञानाभ्यासमें समय लगावें, गुरुजन मिलें, उनसे पढ़कर

Version 1

ज्ञानाभ्यास करें, न मिलें तो पुस्तकका भी बहुत अच्छा सहारा है। सब समझमें आता है। एक भीतरी भावनासे उस पुस्तकका अध्ययन करें। अध्ययन करनेकी विधि यह है कि जो पढ़ना उसे समझ-समझकर पढ़ना। जो पढ़ गए उसे फिर दुबारा पढ़ना, तीसरी बार उस ग्रन्थको बंद करके जितना स्मरण रहे उतना उस बातको बोल जाय इस ढंगसे स्वाध्याय चले तो कुछ समय बाद आपको ऐसा मालूम होगा कि मैंने ज्ञानार्जन किया और यह पाया और क शान्तिका मार्ग मिला।

(६८) महान् अजायबघर—यह संसार क्या है, मैं कौन हूं और यहाँ मेरा क्या कर्तव्य है। मुझे आगे क्या होना चाहिए ? कुछ इन बातोंपर दृष्टि दी जाय तो इस जीवकी भलाईका मार्ग निकलता है। यह संसार क्या है ? जन्म मरण करते हुए जीवोंका समुदाय ही यह संसार है। जीव अनेक प्रकारके हैं—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, नारकी, देव, पशु-पक्षी मनुष्य आदिक अनेक जीवोंका समुदाय यह संसार है, और वे सभी जीव जन्ममरणके दुःखी नाना विकल्पोंके संतापसे संक्लेशमें पड़े हुए हैं इन जीवोंका जो समूह है सो संसार है। यहाँ जो कुछ भी दिखता है इसमें सारका नाम नहीं है। मेरे आत्माका किसी भी परपदार्थसे कोई हित न होगा। कुछ भी सम्बंध बना लें व्यर्थका सम्बंध, मिथ्या सम्बंध। प्रत्येक अणु-अणु स्वतंत्र है, प्रत्येक जीव स्वतंत्र है, सबको अपने अपने कर्मोदयसे सुख दुःख है। और मान लो जो जीव आपके घरमें पैदा हुए, मानो ये न आये होते, कोई भी जीव आया होता तो उसे भी मानते कि यह मेरा है। तो जीवसे तो कोई नाता नहीं हैं, और फिर उनसे कोई हितकी आशा नहीं, भलाईकी आशा नहीं। यह कोई उनको गाली नहीं दी जा रही। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि कोई भी जीव कोई भी वस्तु अपना गुण, पर्याय, प्रभाव दूसरेको नहीं दे सकता है। यह वस्तुकी सीमा है। वस्तुस्वरूपकी ही बात कही जा रही है। तो ऐसे इन अनेक पदार्थोंके समूहका नाम संसार है। यह तो एक अजायबघर है। लोग अजायबघर देखने टिकट लेकर जाते, समय खोकर जाते। वह अजायबघर आया कहांसे ? अरे यहींका जो यह जीवसमूह है इस जीवसमूहमें से कुछ इकट्ठा करके एक जगह रख दिए गए हैं, कुछ अन्य अन्य देशोंसे भी ला लाकर इकट्ठे किए गए हैं। अजायबघर तो यह देखनेके लिए बनावटी है और जितना बड़ा यह अजायबघर बनाया इससे असख्यात गुणा ऐसा यह सारा संसार अजायबघर है। जैसे अजायबघरमें भी देखनेभरकी इजाजत मिलती है, छूनेकी इजाजत नहीं मिलती, इसी प्रकार इस अजायबघर संसारको देखने भरकी इजाजत है, छूनेकी इजाजत नहीं है, रागद्वेष करनेकी, लगाव बनानेकी इजाजत नहीं प्रभुकी। लेकिन प्रभुके आर्डरके खिलाफ जो यहाँ इन वस्तुवोंको छुवेगा, लगाव रखेगा,

मोह रखेगा वह गिरफ्तार होगा, कर्मबन्धनमें आयगा, उसको बड़ा दण्ड मिलेगा। जन्म मरण से बढ़कर और दण्ड क्या है जीवको ? तो संसारका ऐसा स्वरूप है।

(६९) **मैं कौन हूं इसकी प्रबल जिज्ञासामें समाधानकी सुगमता**—अब चलो अपनी बात देखो मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, इस प्रकार अनेक बार प्रश्न कर करके यह स्वयं उत्तर पा लेगा। पहले तो इस जीवपर इतना व्यामोह पड़ा है कि ऐसा प्रश्न ही नहीं उठ ना चाहते हैं कि मैं कौन हूं। प्रश्न ही अगर कोई उठाये कि मैं कौन हूं तो समझो कि उसे ऐसा करनेका भाव हुआ है। मैं कौन हूं, ऐसा जो प्रश्न करता है, जानता है, ऐसा समझदार पदार्थ हूं मैं। उसकी विशेषता है जाननकी। बाहरके पदार्थका स्वरूप तो एक पिण्ड रूप है। सामने दिखता है, ऐसा आकार है, यह मालूम होता है और अपने आपमें आपका स्वरूप कैसा मालूम होगा कि केवल ज्ञान ज्ञान भाव है, वह ही है मैं आत्मा। जो सहज ही अनाकुलता सहित है ऐसा ज्ञानस्वरूप हूँ मैं यह आत्मा। यह इसका एक स्वभाव है। स्वभाव किसीसे उधार नहीं मिला। स्वभाव पदार्थकी स्वयं जान है। स्वभाव नहीं तो सत्ता नहीं, ऐसा ज्ञानस्वभाव होकर भी जो वर्तमानमें हमारी स्थिति हो रही, वह एक बड़ी दयनीय स्थिति है। कहां बाहर चित्त रहता है ? किस किसका उपयोग चलता है, किस किसमें चित्त रमा करता है, विकल्प उठता है। व्यर्थकी कल्पनायें जगती हैं और दुःखी होते हैं, यद्यपि यह सब भ्रमवश हो रहा है, पर भ्रम करनेकी भी तो कुछ मलिनता ही तो है।

(७०) **ज्ञानस्वच्छताके तिरोधानसे मलिनताकी प्राकृतिकता**—प्रश्न होता है कि ऐसी मलिनता इस जीवमें क्यों आयी ? भले ही कर्मका सम्बंध है, रहा आये। एक बोरेमें गेहूं चने इकट्ठे रहते हैं तो इससे कहीं गेहूं चना नहीं बन जाते। गेहूं तो गेहूं ही रहता है। कर्म और जीव ये दोनों एक साथ रहते हैं, रहे आये, फिर जीव अपने स्वभावको तजकर ऐसा बन कैसे गया ? अगर कहो कि भाई गेहूं चनेका तो बहुत विषम दृष्टान्त है, अच्छा, तो चलो—दूध पानीका दृष्टान्त लो। दूध और पानी एक साथ आये हैं और स्वादमें भी जो पीवे भिन्नता मालूम होती है, फिर भी दूधके जो कण हैं उनमें दूध ही है, पानीके जो कण हैं उनमें पानी ही है। तो वे कहीं एक तो नहीं हो गए। स्वभाव तो नहीं बदल गया। यहाँ जीवमें क्यों आफत आयी ? भिन्न है। एक मोटा दृष्टान्त है। अच्छा, तो और चलो, जैसे स्वर्णपाषाण है, मिट्टी है उसमें स्वर्ण है, स्वर्ण मिट्टी ये दोनों एक साथ हैं और उसमें स्वर्ण का विकास नहीं है, विकास करनेसे विकास होता है, हो फिर भी मिली हुई हालतमें भी जो स्वर्णके कण हैं वे तो स्वर्ण ही हैं, वह दूसरा तो नहीं बन गया, ऐसे ही जीव और कर्म दोनों एक साथ मिले हैं, मिलें, पर जीव तो एक ही है। वह अन्यरूप कैसे हो गया ? भाई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह स्वर्ण पाषणका भी दृष्टान्त मोटा है। तो अच्छा और देखो—जैसे दर्पणके सामने कोई लाल पीला पदार्थ आया है, दर्पणमें लाल पीला प्रतिबिम्ब पड़ गया है, दर्पण कैसे बन गया ? उस समय लाल पीला प्रतिबिम्ब रूप हो गया। क्या किया वहाँ ? स्वच्छताकी हानि। इसी प्रकार आत्मा और कर्म कर्मविपाक सामने आया और उसकी झाँकी हुई इस आत्माके उपयोगमें। उस समय यों समझिये—जैसे ज्ञानमें कोई पदार्थ आता है तो ज्ञान जैसे उस पदार्थ में प्रतिबिम्ब रूप हो जाता है तो ऐसे ही यह कर्मविपाक यह अंधकाररूप है, और वह अंधेरा इसपर छा गया है तो यह समझ भी नहीं पाता कि मेरेमें कर्म आये हैं, कर्मविपाक झलके हैं और न समझकर भी प्रभाव इसपर वही होता है कि जैसे स्वच्छताकी हानि होनी चाहिए और चूंकि इसमें विकार करनेकी आदत है तो भीतरमें विकार करनेकी गुँजाइस तो रहती नहीं, क्योंकि कर्मविपाकका अंधेरा छाया है। तो यह बाहरके पदार्थोंका उपयोग करने लगता है। यों ही आत्मामें विकारकी विधि होती है। स्वभाव है केवल ज्ञाताद्रष्टा रहनेका और वह स्वभाव कहीं गया नहीं। विकार होनेपर भी स्वभाव रहता है, पर वह स्वभाव तिरोभूत है। इसका तिरस्कार भी विलक्षण है। यह तिरोभाव इस प्रकार नहीं है जैसे कि कभी किसी त्यागीका आहार कराते कमरेमें और कमरेमें रखी हैं बहुतसी गड़बड़ चीजें, तो एक रंगीन चद्दर उसपर ढक दी जाती है, जिससे कि एक शोभा हो जायगी, चीजें दिखेंगी नहीं। तिरोभाव हो गया उन चीजोंका, इस तरहका तिरोभाव यहाँ नहीं है। यहाँ इस तरहका तिरोभाव है। जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़नेपर स्वच्छताका तिरोभाव है।

(७१) **सहजानन्दमय निजतत्त्वके आश्रयमें कष्टकी अघटना**—हम सब स्वरूपतः ज्ञानानन्दके निधान हैं। कोई कमी नहीं है। कोई कष्ट नहीं है, किसी प्रकारकी आकुलताका अवकाश ही नहीं है, अपनेको देखें अपनेमें रमें, किसी प्रकारका क्लेश ही नहीं है, लेकिन अपनी ईमानदारीसे जब यह जीव हट जाता है और जिससे कुछ लेनदेन नहीं, सम्बंध भी नहीं उसके विचारमें आ जाता है तो इसको कष्ट होना प्राकृतिक ही है। अपनेको देखो—मैं ज्ञानस्वरूप हूं। कर्मोपाधिके सन्निधानमें उसकी आदत संसारमें रुलनेकी, विकल्प करनेकी हो रही है। मैं अपने स्वभावको परखूं, स्वभावमें आलम्बन लूँ तो इन सारे विकारोंको मैं छोड़ सकता हूं। देखो काम दो है—चाहे किसी जीवको अपना परिवार कुटुम्ब पुत्र मित्र मान मानकर विकल्प कर करके कर्मबन्ध करके संसारमें रुल ले या समग्र परवस्तुओंसे मोह हटा-हटाकर अपने ज्ञान प्रकाशमें आकर ज्ञानस्वरूपमें तृप्त होकर मोक्षमार्ग बनाकर मुक्त हो लें। तीसरी बात तो कुछ होती नहीं। अब इनमें जो बात पसंद हो, संसारका रुलना अच्छा लगे तो उसका भी उपाय सही सामने है, मोह करें, दुःखी हो, जन्म मरण करें, पेड़ पौधे बनें, जिस चाहे हालमें हों उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का भी उपाय बिल्कुल पास है, कोई अधिक खोजनेकी जरूरत नहीं और मुक्त होना चाहते हो तो आत्माका ज्ञान करो, सबसे मोह हटाओ, बड़ी दृढ़ता पूर्वक सत्य निर्णयके साथ मेरा मात्र मैं हूं, मेरा अन्य कुछ नहीं है। अपने ज्ञान प्रकाशमें आयें, ज्ञानस्वरूपमें तृप्त हों और भावना रखें मुक्ति मिलें।

(७२) **अज्ञानियोंकी कष्टप्रियता**—मुक्तिकी बात होनहार भव्य जीवोंको मिलती है। दिखता भी है संसारमें कि प्रायः मनुष्य धनसंचयकी ओर, कीर्तिसंचयकी ओर दौड़ रहे हैं। प्रायः सभी मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं। बिरले ही मनुष्य हैं ऐसे कि जो धनकी परवाह न रखें, बाहरके समागममें चाह न जगे, अपने भावको पवित्र बनानेको ही भावना रहती हो। होता क्या है कि यह बिरला पुरुष इन विषय साधनोंकी ओर दौड़ लगाने वाले श्रीमानोंको पागल दिखे, पर वह बिरला पुरुष भी इन मोहियोंको पागल समझता है। अब यह बिरला पुरुष अनेकोंके द्वारा पागलके रूपमें देखा जानेसे वह अनेक विकल्प करे और उन ही जैसा बन जाय वह भी ज्ञानसे हटकर अज्ञानमें आ जाय ऐसा तो होना युक्त नहीं है। जिसका होनहार अच्छा है वह दूसरेके किसी भी प्रकार कहे जाने पर भी अपने ज्ञान विवेक को नहीं छोड़ता। साथी यहां किसी का कोई नहीं है, केवल एक अपना भाव ही साथी है। कुछ लोग यहाँ साथी बन रहे हैं तो वे आपके पुण्योदयका निमित्त पाकर बन रहे हैं। पुण्य आपको मिला कैसे ? कुछ भाव सही बनाया तो वर्तमानमें कुछ लोग पूछने वाले हो रहे हैं तो उसका आधार है आपकी सद्भावना। ऐसा कहीं नहीं देखा जाता कि कोई अन्याय अत्याचार करने पर उतारू हो और उसका लोग साथ निभाते हों। सब अपने भावोंका फल है। जिसपर जो बीतता है उसका कारण है स्वयंका भाव। सोचता है अपने लिए कि क्या करें कि जिससे मेरा हित होगा। ये बाहरी पदार्थ रमनेके योग्य नही, जिन्दगीमें अनेक धोखे होते हैं, उन चोट और धोखोंसे सावधानी तो आ जानी चाहिए, लेकिन नहीं आ पाती तो इसमें महान मिथ्यात्व ही कारण समझिये। जैसे किसी बुड्ढेको उसके घरके नाती पोते सतायें, कहीं हाथ झकझोरें, कहीं सिर पर चढ़ें, कहीं मूँछ पटायें, तो वह बूढ़ा बड़ा हैरान होकर रोने लगता है। वहाँ कोई संन्यासी आया, पूछा—भाई क्यों दुःखी हो रहे हो ? तो वह बूढ़ा बोला—क्या बतायें संन्यासी जी, हमारे ये नाती, पोते वगैरह हमें बहुत हैरान करते हैं। तो वह संन्यासी बोला—क्या मैं आपका दुःख मेट दूं ?····हां हां, आपकी बड़ी कृपा होगी। वह बूढा तो जानता था कि संन्यासी जी कोई ऐसा मंत्र पढ़ देंगे कि जिससे ये नाती-पोते सब हमारी आज्ञामें, हमारी हू हजूरीमें रहने लगेंगे। पर संन्यासी बोला—अच्छा तुम इन नाती पोतोंका साथ छोड़ दो, चलो हमारे साथ चलो। तो वह बूढ़ा बोला—अरे संन्यासी

http://sahjanandvarnishastra.org/

जी तुम क्या कह रहे ? हम नहीं जाते तुम्हारे साथ। ये बच्चे चाहे मारें पीटें, फिर भी ये हमारे नाती पोते ही रहेंगे, हम इनके बाबा ही रहेंगे। तुम कौन बीचमें दलाली करने आये। हमें ये चाहे मारें, पीटें, हैरान करें, कुछ भी करें, पर हम इन्हें छोड़कर नहीं जा सकते। तो देखिये—जिस मोहके कारण हैरान होते रहते, उसे छोड़ना भी नहीं चाहते। जैसे बहुत-बहुत दुःखी होनेपर भी भीतरका मोह नहीं निकलता, दुःखी होना पड़ता। ऐसे ही इस जीवनमें किसको दूसरे पदार्थके निमित्तसे संकट नहीं आता ? सभीपर संकट आते, पर उन्हें ज्ञानी पुरुष संकट ही नहीं मानते।

(७३) **धार्मिक वातावरणकी प्रयोजकता**—घरमें रहने वाले दो चार जीवोंसे संपर्क बनाकर, उनमें आशक्त होकर अगर अनाकुलता चाहें तो यह बात असम्भव है। जैसे सूईके छिद्रमें ऊँटका प्रवेश होना असम्भव है ऐसे ही परके सम्पर्कसे अनाकुलता प्राप्त करना असंभव है। हम कुछ साधना भी न करना चाहें और कुछ धर्मके ख्यालसे उसमें अपना समय भी लगाना चाहें तो यह बात एक मझधार जैसी बात हो गई। हम किसका स्वाद नहीं ले पाये ? धर्म का। धर्मका स्वाद लेना है तो कोई क्षण तो चित्तमें आना ही चाहिए कि मेरा किसीसे कोई संबंध नहीं। मैं एक अकेला हूँ, ज्ञानमात्र हूं, ऐसा निहारनेका कुछ चिन्तन तो करना चाहिए। मिलेगी मुक्ति, कटेंगे संकट, पर कुछ साधना तो बनाना चाहिए। साधना तो करें नहीं और चाहें मुक्ति, तो यह तो एक बच्चों जैसी हठ है। बच्चे अज्ञानी ही तो कहलाते हैं। दार्शनिक शास्त्रमें बताया है कि जो जिस विषयमें ज्ञान नहीं रखता वह उस विषयमें बालक कहलाता है। कोई बालक जलमें तैरना सीखने गया। वह डूबने लगा तो घबड़ाकर किसी तरह निकला और मनमें तो था कि मैं तैर लूं मगर वहाँ बड़े कष्ट आये। पानी मुखमें भर आया, किसी तरह निकला, लेकिन हठ उसकी यह कि मुझे तो तैरना सीखना है। वह रोने लगा। माँ पूछती है—बेटा क्यों रोते हो ?····माँ मुझे तैरना सिखा दो।····अच्छा, चलो तालाबमें तुम्हें तैरना सिखा दें।···अरी माँ ऐसा करो कि मुझे तालाबमें तैरना न पड़े और तैरना आ जाय, ऐसे ही यहाँ अज्ञानी जन ऐसी हठ करते कि मुझे साधना कुछ न करनी पड़े, मोहको रंच भी ढीला न करना पड़े और परमात्मसुख, निराकुलताकी प्राप्ति हो जाय, तो उनकी यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ? कुछ करनी होगी धर्मसाधना, अपने सारे परिवारको एक धर्मके रंगमें रंग देना बहुत आवश्यक है। कोई घरमें रहने वाला पुरुष सोचता हो कि मुझे तो ज्ञानप्रकाश मिल गया है, मैं तो अपना उद्धार कर लूंगा, मेरेको क्या बाधा ? तो भाई घरमें रहकर अगर स्त्री पुत्रादिकपर भी वह धर्मका रंग न चढ़ेगा तो काम न चलेगा। तो आप अपने घरको धार्मिक बनायें। दृष्टि दीजिए, ऐसा काम बनावें कि जिससे इस संसारसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मुक्ति मिले।

(७४) **अपनेको नियंत्रित कर निर्बाध होनेका अनुरोध**—यह श्रेष्ठ मनुष्यभव पाया है तो यहाँ स्वच्छन्द होकर जो मन चाहता है उसके अनुकूल प्रवृत्ति नहीं करना है, बल्कि इस मनको अपने आधीन करना है। जो मनमें आये वह नहीं करना है किन्तु हम जैसा चाहें वैसा मनको करना है। ये इन्द्रियाँ विषयोंमें प्रवृत्ति करती हैं, ये आँखें जिसे देखना चाहती उसे मैं नहीं देखना चाहता, ये कान जो बात सुनना चाहते उसे मैं नहीं सुनना चाहता, यह जिह्वा जिसका भक्षण करना चाहती उसे मैं नहीं करना चाहता····, बल्कि जैसा मैं चाहूं वैसा इन इन्द्रियोंको करना होगा यही बात सब इन्द्रियोंके विषयमें है। ऐसा इन्द्रियपर मनपर संयम हो, इतना बल हो तब तो कुछ आशा रखें कि हम धर्म मार्गमें आ सकते हैं, चल सकते हैं, लेकिन ऐसा साहस जो खो दे, दिन भर भी खाता रहनेसे न अघाय और रातको खाना पड़े ऐसा असंयमी जीव धर्ममार्गमें क्या लग सकता है ? कोई भी साधारण व्रत ले और कोई मौका पड़े ऐसा कि थोड़ी देरको व्रत टूटता है तो टूट जाने दे फिर व्रत पालेंगे, ऐसा कोई सोचे तो वह पुरुष व्रत पालनेके लायक नहीं रहता। साधारण सी भी बात हो और लोग समझायें यह तो मामूली बात है। किसीने नियम लिया कि मैं आधे घंटे इस कमरेमें ही बैठूंगा और मानो १० ही मिनट बाद कोई आ गया बात करनेको। बाहरसे दरवाजेपर खड़ा ही बात करता है या कोइ बड़ा आदमी आ गया, उस समय यह सोचें कि जरा बाहर निकल लूँ उसमें क्या हर्ज होता, फिर अन्दर आ जाऊँगा। अरे जो संकल्प किया, जो नियम किया उसके खिलाफ जरा भी चले तो यहाँ आदत बन जाती है असंयत अनकन्ट्रोल्ड बननेकी, अतः दृढ़ता होना कि कुछ भी कहें लोग तो भी हमें नहीं उठना है। कितना संयत करना है इस जीवको अपने आपके स्वरूप बोधमें, इसका अनुमान कर लीजिए। क्या करना है ? आत्माको जानो, आत्मामें रमो ? भ्रम हटाओ। दो काम एक साथ न होंगे कि भ्रम और मोह भी करते चले जावें और अपने को पवित्र अथवा धर्मात्मा भी बना लें। दो काम एक साथ नहीं हो सकते। विवेक बनावें कि मेरे आत्माका लाभ किसमें है। जरा अपना स्वभाव तो देखो, सब कुछ आसानीसे छूट जायगा। जब तक बड़े स्वादकी चीज न खायें तब तक साधारण भोजनकी उमंग रहती है। बढ़िया स्वाद आये तो घटियाको कौन पूछता है ? ऐसे ही अगर आत्मीय आनन्द मिल जाय, आत्मवैभवके दर्शन हो जायें तो इन विषयोंको कौन चाहे ? आत्मवैभवके दर्शन करें और सच्चा बड़प्पन प्राप्त करें।

(७५) **कष्टसहिष्णुता व तपश्चरणसे आत्ममहिमाकी प्रगति**—वास्तविक बड़ा बनने का प्रयास करते रहें, आत्ममहिमाके उद्यममें बहुत कष्ट आवेंगे, बहुत उपसर्ग आवेंगे उन्हें

समतासे सहन करें। तो भाई जो बड़ा बना है वह बहुत-बहुत कष्टोंको समतासे सहन कर, विचलित न होकर अपने लक्ष्यमें बढ़े चले जानेसे ही महान् बन सका। वैसे लोकमें कहते हैं ना, बड़ा नामका एक पकवान होता है जो कि उड़दसे बनता है। तो बड़ा बननेकी भी देखो कैसी प्रक्रिया होती है ? किसका बड़ा बना……उड़दका। खेतमें उड़द था, खेतमें था, लहलहा रहा था, अपने सही पोषाकमें था। पहले उन्हें काटा गया और फिर बैलोंके पैरोंसे दबोचा गया याने उसकी दाँय की गई। तो पहला आक्रमण तो यह हुआ कि बैलोंके पैरसे दबोचा गया। वहाँसे निकला तो चकियाके बीचमें दला गया। उसके दो टुकड़े हो गए। देखिये उड़द पर कितने संकट आये तब वह बड़ा बना। यहाँ यह देखना है। दूसरा आक्रमण यह हुआ। तीसरे आक्रमणमें उड़दकी दालको शामको पानीमें भिगो दिया, रातभर पानीमें भीगे रहे। रातभर कोई मनुष्य इस तरह भीग सकता है क्या ? रातभर भिगोया गया यह हुआ तीसरा आक्रमण, अब चौथे आक्रमणमें क्या हुआ कि जैसे ही सुबह हुई कि उस उड़दको त्वचाको हाथोंसे रगड़-रगड़कर छुटाया गया याने छिलका निकाला गया। छिलका अलग हो जानेपर सफेद उड़द रह गया। ५वें आक्रमणमें उसे सिल-बट्टेपर पीसा गया। इतनेपर भी सन्तोष न हुआ तो छठे आक्रमणमें उसमें धनिया, मिर्च डाल दिया, खूब भुरक दिया गया, ७वें आक्रमणमें उसे खूब अच्छी प्रकार फेंटा गया। ८वें आक्रमणमें उसकी शक्ल बिगाड़ दी गई। ९वें आक्रमणमें उसे दबोच-दबोच करके एक प्रतर गोल सा बनाया गया। १०वें आक्रमणमें उसे तपते हुए तैलमें पटक दिया गया, फूल गया। ११वें आक्रमणमें उसके पेटमें लोहेकी पतली सींक पिरो दी गई, यह देखनेके लिए कि कहीं यह बड़ा कच्चा तो नहीं रहा। १२वें आक्रमणमें उसे नमकके गर्म पानीमें डुबो दिया। इतने आक्रमण झेलनेके बाद उसका नाम बड़ा पड़ा। यहां एक भी आक्रमण झेलनेको कोई तैयार है क्या ? यद्यपि उड़दमें जान नहीं, फिर भी दृष्टान्तका भाग देखें कितने आक्रमण उसपर हुए। यहाँ जरा-जरासे कष्टोंमें रो पड़ते हैं, दिलको बेचैन कर डालते हैं, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। क्या करें, बड़ा संकट है। अरे संकट क्या ? अपने आपको जाना तो सब संकट खतम। रह गई जिम्मेदारीकी बात तो हम किसीके जिम्मेदार नहीं, सब अपने-अपने जिम्मेदार हैं। सबका कर्मोदय है, उनके उदय से उनका भविष्य बनता है, हम जिम्मेदार नहीं उनके। मोहमें जिम्मेदार बन जाते हैं। आप सोचेंगे कि गृहस्थीमें तो इस तरह न बनेगा, हाँ न बनेगा, क्योंकि सब प्रकारके आराम चाहते हैं तो उसमें आपको राग करना पड़ेगा, तो वह राग सब व्यवस्था बनायगा, पर मोह तो निकाल दो।

(७६) स्वतंत्रताकी सुध भूलकर पराधीन विषयसुखकी चाहमें विडम्बना—सब जीव

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वतंत्र स्वतंत्र हैं, किसीका किसीसे नाता नहीं। सब अपने-अपने हो में कहीं न कहीं रहा करते हैं। मेरी तो एक जिम्मेदारी केवल मेरेपर है। अच्छा भाव बना लो तो भवितव्य अच्छा बनेगा, बुरे भाव बनायेंगे तो भवितव्य बुरा बनेगा। ऐसे इन बाहरी समागमोंसे जो उपेक्षा रखता है इस उपेक्षासे बिगाड़ नहीं, बल्कि सुधार है। ऐसा ज्ञानी पुरुष आत्मदर्शन करके अनुकूल रहा करता है। तो करनेका काम यह है लेकिन कर क्या रहे ? जैसे कहावतमें कहते हैं कि आये थे हरिभजनको, ओटन लगे कपास याने एक बड़ा काम प्रभुभक्ति करनेको आये थे, पर ऐसी विडम्बनामें फंस गए कि वहाँ कपास ओटने लगे। कपास ओटनेकी बात क्यों कहा इस कहावतमें कि दिनभर कपास ओटा तो कोई किलो दो किलो ओट पाये। यों सारा श्रम करके फल कुछ न मिला। तो आये तो थे आत्मकल्याणके लिए इस मनुष्यभवमें, आत्माको जानूँगा, आत्मामें रमूँगा, आत्मामें ही तृप्त रहूंगा। भव-भवके कर्मबन्धनको मिटाऊँगा। समस्त आकुलतायें दूर करके अनाकुल शांत रहूंगा। आये थे इस कामके लिए, लेकिन क्या करने लगे ? पञ्चेन्द्रियके विषय और मनके विषयमें सुख मानने लगे। ये वैषयिक सुख पराधीन हैं। कोईसा भी सुख हो, उसमें कितनी आधीनता है। जितने भी वैषयिक सुख मिले हैं उनकी सम्हाल रखते हैं। जो अपने आधीन बात नहीं है उसे करना पड़ता है। जो अपने पास नहीं था उसका संयोग जुटाना पड़ता है तब विषयसुख मिलता है।

(७७) **विषयसुख व कषायकी हठका दुष्परिणाम**—एक मास्टर मास्टरानी थे। एक दिन दोनोंके मनमें आया कि आज तो पकौड़ी बननी चाहिए, तफरीका तो दिन था। मास्टर बाजारसे सारा सामान ले आये और मास्टरानीने पकौड़ी बनाया। वे पकौड़ी २१ तैयार हुईं। सो मास्टरानीने क्या किया कि मास्टरके सामने १० पकौड़ी परोस दी। मास्टरने पूछा—तुमने अपने लिए कितनी पकौड़ी रख ली ? ग्यारह।....हम ग्यारह खावेंगे, तुम १० खावो।....नहीं, नहीं, हमने अधिक परिश्रम किया, हम ११ खावेंगे तुम १० खावो। इस प्रकारकी हठ दोनोंमें पड़ गई कि हम ११ खावेंगे तुम १० खावो। बादमें यह निर्णय किया कि अच्छा अपन दोनों मौनसे रहेंगे जो पहले बोल उठेगा उसको १० खानी पड़ेंगी। आखिर दोनों मौन हो गए। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए, दोनों अपनी हठमें जमें रहे। वहीं पड़ गए, तीन दिन हो गए। अब तो उनकी दमसी निकलने लगी। इधर स्कूलमें बच्चों ने सोचा कि क्या कारण है जो दो-तीन दिनसे मास्टर मास्टरनी नहीं आये सो बच्चे लोग उनके घर पहुंचे, द्वारके किवाड़ फाड़कर घरके अन्दर घुसे। देखा तो वहाँ दोनों मरेसा पड़े हुए थे। लोगोंको खबर हुई कि मास्टर मास्टरानी तो घरमें मरे पड़े हैं। लोग जुड़े, दोनोंको एक ही गठरीमें बाँधा, श्मशान ले गए, वहाँ लकड़ी कंडा आदिसे चिता बनायी, आग लगाने

Version 1

को ही थे कि मास्टरानी बोल उठी—अरे चलो तुम ११ ही खा लेना, हम १० ही खा लेंगे। समझकी बात कि उस दिन जलाने वाले लोग भी २१ ही गए थे सो वहाँ सभीने सोचा कि देखो यह भूतनी (चुड़ैल) तो कहती है कि हम इन खड़े हुए लोगोंमें से १० लोगोंको खावेंगे और इस भूतसे कहती है कि तुम ११ लोगोंको खा जाना, सो इस भयसे उनमें भगदड़ मच गई। तो देखिये—एक जरासी पकौड़ीकी तफरी करनेमें कितनी विडम्बना बन गई तो फिर संसारके इन वैषयिक सुखोंकी तफरीमें न जाने कितनी विडम्बना बन जाय। ऐसी अनेक बातें तो गृहस्थीके बीच रोज-रोज आती होंगी। यह सारा संसार दुःखमय है। अरे सबसे निराले अपने इस ज्ञानानन्द स्वरूपको तकूं और आनन्द पाऊं। क्या कष्ट है? कष्ट आधीनताका है। अपने स्वरूपको सम्हाले तो इसकी सारी विडम्बनायें समाप्त हो जायें।

(७८) भ्रान्तिज क्लेशके विनाशमें सहजानन्दधर्मका प्रादुर्भाव—जैसे संसारमें किन्हीं मनुष्योंको किसीके प्रति कोई भ्रम हो गया हो और उस भ्रमके कारण उसके प्रति नाराजी रहती हो और कदाचित् वह भ्रम दूर हो जाय तो वह उमड़ करके प्रेम बरसाता है उसपर, इसी प्रकार भ्रमसे आत्माको कुछ और-और समझकर जो इसके प्रति अन्याय किया जा रहा है उस विषयको लेकर मोह रागद्वेषका लगाव रखकर जो इस आत्मा भगवानपर अत्याचार किया जा रहा है। किसी समय भ्रम मिट जाय तो भ्रमका विनाश होनेपर इस आत्मदेवपर उमड़-उमड़कर उमंगमें आकर बहुत तीव्र अनुराग जंचता है, जिसको अपने आत्माके प्रति अनुराग है उसको अपने मोक्षके प्रति अनुराग है। अपनी तो सब भलाई चाहते हैं, हर उपायों से अपनेको आनन्दमें रखना चाहिए। तो अपनेको आनन्दमें रखनेकी ही बात धर्म सिखाती है। धर्म कोई कठिन चीज नहीं, गैर चीज नहीं, परिश्रमकी चीज नहीं, आफतकी बात नहीं किन्तु हम चाहते हैं आनन्द तो सच्चा आनन्द मिले उसीका उपाय है धर्म। और, और उपायोंमें तो बड़ा खेद होता है, श्रम होता है, कठिनाइयाँ आती हैं, पर धर्मका ऐसा भला सीधा उपाय है कि उसमें कठिनाइयोंका काम नहीं, किसी तरहका उपद्रव नहीं। वह धर्म क्या है? इन्द्रियोंका काम छोड़कर मनको भी बाहरमें न जाने देकर इस मनको भी अपनेमें नियत बनाकर जो सहज विश्राम मिलता है उसमें जो अद्भुत निज ज्ञानका प्रकाश होता है बस उस आनन्दके अनुभव करनेका नाम है धर्म। धर्मका अर्थ है अलौकिक सत्य, परम आनन्द लूटना। धर्म और आनन्द अलग-अलग चीज नहीं है। जो वास्तविक आनन्दका अनुभव है वही धर्म है। धर्ममें खेद नहीं, किन्तु अपूर्व आनन्द प्रकट होता है।

(७९) असार भिन्न मायामय बाह्य वैभवसे मोह तजकर धर्मपंथमें लगनेका अनुरोध—भैया! विचार करो धर्मके पंथमें चलना क्यों कठिन लग रहा? अगर इस कारण

कठिन लग रहा हो कि कोई वैभवकी चिन्ता है, वैभवकी आशा है, मेरा धन बढ़े, अमुक हो तो वहाँ समझ लीजिए वही कि धन वैभव तो जीर्ण तृणके समान असार हैं। किसी परिस्थितिमें उपचाररूप थोड़ा काम आता है, इसलिए उसका कुछ लगाव तो होता है, पर उस लगावको इतना लम्बा करना, उसे इतना दृढ़ करना, वह प्रयोजनसे बाहरकी बात हो जाती है। धन वैभव सब जीर्ण तृणवत् असार हैं मेरे आत्माके हितके प्रसंगमें। कल्पनायें करें, लाखोंकी सम्पदा जोड़ लें, आखिर होगा क्या ? उम्र बढ़ती जा रही है, मरणकाल निकट आ रहा है। कभी मरण होगा ही, मरकर यह जीव न जाने कहाँसे कहाँ पैदा होगा। यहाँकी संपदासे भी लाभ क्या होगा ? और अनेकों भवोंमें अनेकों सम्पदायें पायीं। उन सम्पदाओंसे आपको यहाँ लाभ क्या है ? तो वैभव जीर्ण तृणवत् असार है। शायद यह सोचा जा रहा हो कि वैभव बढ़नेसे यहाँ लोकमें इज्जत बढ़ती है और देखा भी जा रहा है, लेकिन जब ये लोग, यह समागम, यह समूह असार और बेकार है, मायारूप है तो मायासे इज्जतकी चाह करना कोई सही बात होगी या मायारूप बात होगी ? जैसे नींदमें स्वप्नमें बड़े-बड़े राज्य भोगना यह सही बात है कि मायारूप है। इसी तरह मोहकी नींदमें ये कर्मोंके प्रेरे दुःखिया जन्ममरणसे अपवित्र इन जीवोंसे अपनी इज्जत चाहना यह बात एक पागलपन है। और फिर वस्तुतः अपनी कोई इज्जत नहीं चाहता। जो यह देह मिला, जो इसकी यह मुद्रा है इसको ही समझता है कि यह मैं हूं और फिर इसकी इज्जतकी बात मनमें आती है। वे सब विनाशीक चीजें हैं। मैं शरीर नहीं हू, इस शरीरसे अत्यन्त निराला ज्ञानज्योतिस्वरूप आत्मा हूं।

(८०) अत्यन्त भिन्न दो पदार्थोंकी एकताके परिचयका महाव्यामोह—देखो भया ! कितनी विभिन्न चीज हैं—शरीर तो जड़ है, शरीरमें तो लहू, माँस, हड्डी आदिक अपवित्र चीजें हैं। और आत्मा परमात्मस्वरूप ज्ञानमयी ज्योतिर्मय है, जिसमें सर्व पदार्थोंका ज्ञान होता है ? कभी असलीमें नकली मिल जाय तो भी भ्रमकी गुंजाइश समझो, मगर जीवके साथ तो नकली भी नहीं मिला, देह तो जीवस्वरूपसे बिल्कुल विपरीत है। वहाँ भ्रमकी तो यह विकट मूढ़ता है। कोई भ्रम कर ले तो लोग कहते हैं कि वह हो गया भ्रम, क्योंकि समान असली रुपयाके लोभमें कोई मामूली नकली नोट मिल जाय और कोई उसको ही ले ले तो कहा जायगा कि भाई भूल हो गई। मगर यहाँ असली नकली जितनी भी तो बात नहीं है कि असली आत्मा है और शरीर कुछ आत्माकी तरह मामूली नकली चीज है। बिल्कुल भिन्न है, विपरीत दशा है। जंगलमें रोझ दिख जाय और उसमें कोई गायका भ्रम कर ले तो वह अधिक पागलपन तो न कहा जायगा और कोई किसी चिड़ियामें ही गायका भ्रम कर ले तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह कितनी अटपट बात है ? बिल्कुल भिन्न भिन्न दो बातें हैं। कहाँ तो चिड़िया और कहाँ गाय। कोई दुनियामें ऐसा बेवकूफ न मिलेगा जो चिड़ियाको गाय मान ले। वहाँ भ्रमका कोई काम ही नहीं। भ्रम तो वहाँ कहलाये कि जब उसके समान कुछ कुछ बात हो। जब समानता जरा भी नहीं किसी भी बातमें, शरीर और जीवमें, फिर उसका भ्रम जो लग रहा है इससे अधिक और मूर्खता या पागलपन क्या कहा जाय ? तो जैसे लोकमें जो मूर्ख होता है, पागल होता है वह कष्ट पाता है। तो जो परमार्थसे मूर्ख है, पागल है, वह अगर जन्म मरण करनेका कष्ट पाये, कीड़ा मकोड़ा पेड़ पौधा बननेका कष्ट पाये तो भी उचित ही है।

(८१) **दुर्लब्ध सुविधाओंके सदुपयोगसे अपूर्व लाभ उठानेका अनुरोध**—इस भवमें जहाँ इन्द्रियाँ ठीक मिली हैं, मन ठीक मिला है, यहाँ यदि मनका सही उपयोग न करें तो एक तो जीवन बेकार है। दूसरे फिर यह मन और इन्द्रियां न मिलेंगी, हां स्पर्शन इन्द्रिय तो एक लाजमी चीज सी रह गई संसारमें। वह इन्द्रिय तो न मिटेगी, निगोद हो गए तो है तो एकेन्द्रिय मगर और और इन्द्रियां न मिलेंगी। इसका सदुपयोग करें मनको सही मार्गमें लगायें और अपने आपमें अपनेको खोजें और हितकी बात लायें। लेकिन एक दीवानासा बन जाना पड़ता है। जैसे लोकमें किसी स्त्री या पुरुषके प्रेममें दीवाना बन जाते हैं, जिसके ऊपर कथायें सनीमा वगैरह गढ़े जाते हैं। तो जैसे उन आशक्तोंको और कुछ नहीं सूझता। सिवाय एक उस लक्ष्यमें इस पद्धतिका दीवाना बनना पड़ेगा अपने परमात्मस्वरूपके प्रति कि और कुछ न सूझे और यह चित्तमें बात रहे कि मेरेको तो परमात्मस्वरूप होना है। इसके सिवाय मेरा और कोई प्रोग्राम नहीं। भीतरमें एक मुख्य प्रोग्राम बन जाय तो यह मानव-जीवन सफल है। इसके लिए उद्यम क्या करना है कुछ समय भी देना, मन न लगे तो भी मन लगाना, नियम जानकर लेना। नियम इसलिए लिया जाता है कि मन न लगे तो भी उस कामको करे, फिर मन लग जायगा। तो घटा पौन घंटा अपना निजी स्वाध्याय करना, दूसरे को कुछ सिखाना बताना, ज्ञानकी बातमें घंटा डेढ़ घंटा प्रतिदिन समय नियमपूर्वक लगाते रहें तो अपने आपमें अपने अर्जनकी बात बन जायगी कि मैंने ज्ञानका अर्जन किया, संतोष मिल जायगा, शान्ति मिलेगी और इस दुनियामें इन लोगोंकी बातें देखकर भीतरमें भटकने या विह्वल होनेकी बात न उत्पन्न होगी। पुण्यरस बढ़ेगा, धर्ममार्ग मिलेगा, सही काममें, सच्चे ज्ञानमें सत्य श्रद्धासे रहनेमें अनेक लाभ हैं। जब तक दुनियामें रहेंगे तब तक वैभव सम्पन्न रहेगे। जब यहांसे मुक्त होंगे तो अनन्त आनन्दको पा लेंगे। उसके लिए चाहिए विधिपूर्वक ज्ञानका उद्यम।

(८२) **अपने कामका ज्ञान—सत्य ज्ञान पानेके लिए ७ तत्त्वोंकी जानकारी प्रथम**

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आवश्यक है। जैसे तत्त्वार्थसूत्रमें कहते—जीवाजीवाश्रवबंवसम्वरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं, अर्थात् जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं। जीव क्या ? जो चेतन है। जिसमें ज्ञान है सो जीव। और अजीव क्या कि जीवके साथ जो अजीव लगा, कर्म लगा, कोई दूसरी चीज लगी, उपाधि लगी, कोई विरुद्ध चीज लगी, जिसके कारण विकार होता सो अजीव। जब कभी पदार्थमें विकार होता है तो परसम्बन्धके बिना नहीं होता। पानी गर्म होता, तो पानीके खिलाफ है आग। आगका सम्बंध पाया तो गर्मी हुई। कोई चीज अपने स्वभावको छोड़कर विपरीत बातमें लगे तो समझना चाहिए कि वहां किसी उल्टी चीजका सम्बन्ध है। तो जीवसे उल्टा है कर्म। उस कर्मका सम्बन्ध है जीवके साथ, वह है अजीव तत्त्व। तो जीव और अजीवमें दो बातें आयीं। जीव मायने यह मैं जीव आत्मा। अजीव मायने कर्म। जीवमें कर्म आये उसका नाम है आश्रव। अब जीवमें वे कर्म ठहर जायें उसका नाम है बंध और जीवमें नये कर्म न आयें ऐसा ज्ञान बने, ऐसा वैराग्य जगे जिससे कि कर्म न आये उसे कहते हैं सम्वर और जो पहले बांधे हुए कर्म हैं वे झड़ जायें उसका नाम है निर्जरा और सब कर्म झड़ जायें उसका नाम है मोक्ष। देखो जैनधर्मकी यह अ आ इ ई बतला रहे हैं। अब व्याख्यान आजकल ऐसे हो गए, और कुछ लोग भी ऐसे ही शौकीन हैं कि जो मूल बात है उसकी तो कुछ बात नहीं और सुनते जावो, पचासों भी प्रयोजन सुनो, और मूल बात क्या है, तत्त्व क्या है, द्रव्य क्या है ? इसकी बात आ ही नहीं पाती। किंतु इतनी बात समझे बिना मुक्तिका मार्ग मिल नहीं सकता। मैं जीव हूं। उसके साथ कर्म लगे हैं, कर्म आते हैं, कर्म ठहरते हैं, यहां तक तो आफत आफत थी और कर्म आना बन्द हो, बंधे कर्म झड़ें तो उसका फल है मोक्ष होना।

(८३) **कर्मोंसे छुटकारा पानेकी विधिका दिग्दर्शन**—अब यह बात कैसे हो कि कर्म झड़ जायें, ? इस पर विचार कीजिये तो जैसे गीला कपड़ा सूखने डाला और वह नीचे गिर गया, धूल लग गई तो क्या करते हो कि फिर सूखने डाल दिया, कपड़ा सूख गया, झिटक दिया, धूल झड़ गई। तो धूलके चिपकनेका कारण तो गीलाई है। गीलाई न रहे तो कर्म झड़ जायेंगे। कर्मके आनेका कारण है रागद्वेष मोह। रागद्वेष न हों तो कर्म अपने आप झड़ जायेंगे। जो बात जिस ढंगसे करनेकी है उसकी सिद्धि उसी ढंगसे मिल सकती है और उपायसे नहीं। और उपाय कितने ही किये जायें वे मुक्तिके कारण नहीं। मुक्तिका कारण है सबसे। निराला अपने आत्मतत्त्वको परख लेना, यह मैं हूं। जो परख लेता उसको क्यों धीरज बनता ? क्यों नहीं घबड़ाता ? उसने परख लिया कि यह मैं हूं। इसमें कष्टका कोई काम नहीं, इसमें कोई अपूर्णता नहीं। उसे तो जीवन मुक्त सा समझिये। बाहरकी कुछ पर-

Version 1

वाह नहीं। बाहर जो होता हो सो हो। एक ग्रहाना है ना—लेवा मरे या देवा बलदेवा करे कलेवा। एक बलदेवा नामका दलाल था गेहूं अनाज बिकवानेका। तो बाहरका एक गाड़ी वाला आया, उसके गेहूं उस दलालने बिकवा दिया एक दुकानदारको, पर ऐसे वातावरणसे बिका कि गाड़ी वाला तो यह सोचता है कि मैं ठग गया, मैंने सस्ता बेच दिया और खरीदने वाला सोचता है कि मैं ठग गया, मैंने महंगा खरीद लिया। सो वे दोनों तो उदास बैठे थे। अब उस समय बलदेवाने अपनी कपड़ेकी पोटलीसे नास्ता (कलेवा) खोला और एक नीमके पेड़के नीचे बैठकर कलेवा करता हुआ कहता जाये—लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा अर्थात् हमें लेने वाले और देने वाले इन दोनोंसे क्या हानि ? इनमें कोई चाहे जो कुछ सोचे चाहे जिसे नुकसान हो तो हो हमें तो अपने कमीशन भरसे मतलब है। तो ऐसे ही यह ज्ञानी पुरुष जानता है कि बाहरी पदार्थोंमें कुछ परिणमन होता है तो होने दो जिसका जैसा होना है वैसा होगा। ज्ञानी पुरुषको भीतरमें अशान्ति नहीं रहती, धीरज रहता है।

(८४) धीरता व अधीरताकी मनोविकल्पपर निर्भरता—भैया ! देखो—मनके हारे हार है मनके जीते जीत। विपत्ति तो किसीपर कुछ नहीं है। वह तो माननेकी विपत्ति है। जब आत्मा एक अकेला है। इसमें कुछ चिपका नहीं, ज्ञानमात्र है। तो विपत्ति क्या चीज ? क्या कष्ट ? पर कल्पनायें किया, मोह किया, अज्ञान बनाया, परको अपनाया तो वह कष्ट हो गया। अब वह कष्ट क्यों, ज्यादह लगता कि दूसरे भी मोहके अनुरूप बात कहते, दूसरे भी उसके लिये कष्टकी बात कहते। मोही मोही ही तो सब बसे हैं। तो उनकी बात सुनकर लगता कि हाँ कष्ट तो है। जब वैसी ही बात और लोग कह रहे हैं तो अपने आपको भी समझते हैं कि हाँ इसमें कष्टकी बात तो जरूर है ? क्योंकि सभी उसी प्रकृतिके लोग हैं। वैसा ही कहते हैं जैसी बात दूसरोंकी देखी, दूसरोंसे सुनी, वैसी बात पर यह विश्वास कर लेता है बार बार सुननेसे। अगर यह भेद ज्ञानकी बात तत्त्वज्ञान की बात आपको अनेकानेक बार सुननेको मिले तो आपका चित्त भेदविज्ञानके अनुरूप चलेगा। अब जैसी बात सुननेको मिलती है रात दिन चित्त उसी तरफ तो जायगा। तो बाँच कर देखें, उपदेशसे देखें, तत्त्व ज्ञानकी बात अधिक आये तो वहाँ बात बने और वहाँ हृदय अनुकूल है। एक छोटी सी कथा है कि कोई पुरुष एक अच्छी बकरी लिए जा रहा था, तो चार व्यक्तियोंने देखा कि बहुत सुन्दर बकरी है, इसे तो छीनना चाहिए। तो उन चारोंने सलाह कर ली और सलाहके माफिक वे एक एक मील पर जाकर आगे खड़े हो गए। तो जैसी सलाह की थी वैसा ही सभी ने बोला। पहले मीलमें जो आदमी मिला उसने कहा राम राम यह क्या लिए हुए हो कुत्ता सा ? उसने वह बात अनसुनी सी कर दी सोचा कि मैं तो अच्छी बकरी लिए जा रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हूं। आगे गया तो दूसरा बोला—अरे यह कुत्ता कहांसे लाये ? तो वह कुछ शंका करने लगा, अरे मैं कुत्ता ही तो नहीं ले आया, मैं तो ६५ रुपये दे आया। और आगे गया तो एक मनुष्य और बोला—वाह वाह इतना सुन्दर कुत्ता कहांसे लाये ? उसे और सन्देह हो गया। चौथे मीलपर पहुंचा तो वहां भी चौथे पुरुषने वही बात कही– वाह वाह कितना अच्छा कुत्ता लिये चले जा रहे हो ? कहां जा रहे इस कुत्तेको लादे हुए ? उसने सोचा—अरे मैं तो धोखेमें आ गया। कुत्ता खरीद लाया, लो वहीं छोड़कर चला गया। वे तो चाहते थे ही सो उस अच्छी बकरीको उठाकर ले गए।

(८५) **अत्यन्त विलक्षण स्व परमें स्वत्वके भ्रमका विकट व्यामोह**–भैया ! आप लोग सोचतेहोंगे कि क्या कोई इतना भी बेवकूफ हो सकता है ? कुत्ता और बकरीमें तो खासी पहिचान है। कहीं कुत्ता और बकरीमें इतना अन्तर होता है क्या ? आप लोग सोचते होंगे कि वह बकरी वाला बड़ा बेवकूफ था। अरे भाई कुत्ता और बकरीमें तो थोड़ा भ्रम हो सकता है, क्योंकि ४ टांगें उसके भी ४ टांगें उसके भी। कोई ज्यादह अंतर नहीं, मगर यह तो इतना बेवकूफ है कि जहां इतना अधिक अन्तर है कि एक तो है जीव और एक है अजीव, मगर उसे एक मानता है, वह उससे अधिक मूढ़ता है तभी तो अनुभव करता है कि यह मैं हूं, इसने मुझे गाली दी। इसने मुझे यह कहा। अब देखो बकरी और कुत्तेमें तो कुछ समानता है। अगर बकरीको मान लें कि कुत्ता है तो यह अधिक गाली नहीं, मगर यहां जीव अजीव में तो रंच भी सम्बंध नहीं, शरीर जड़ है, जीव चेतन है, शरीर हाड़, मांस वाला है, जीव आकाशकी तरह अमूर्त है, कुछ समानता तो नहीं, मगर यहां भी भ्रम कर बैठते हैं, कर ही रहे हैं—"देह जीवको एक गिनैं, बहिरातम तत्त्वमुधा है।" जो शरीर और जीवको एक जानता है वह बहिरात्मा है। तो जब ७ पदार्थोंका सही ज्ञान होता और उन ७ तत्त्वोंको जानकर ७ तत्त्वोंमें रहने वाला जो एक चैतन्यस्वरूप है, एक ब्रह्म है, अद्वैत ब्रह्म है, इसके बारेमें चर्चा करते हैं, ऐसा जो ९ पदार्थोंमें रहने वाला एक अद्वैत अन्तस्तत्त्व है उसकी जिसे श्रद्धा हुई, उसका जिसे दर्शन हुआ उसका बेड़ा पार है और जो यहां मोह-मोहमें ही कीड़ा-मकोड़ा बन गया तो उसका पूरा नहीं पड़ सकता। तो जो बड़ा अच्छा लग रहा है मोह उसके छोड़े बिना तो हित हो ही नहीं सकता और उसका छोड़ना बड़ा कठिन लग रहा, पर है सरल चीज। इसके होते ही ज्ञानका छूटना जरूर कठिन है, मगर मोहका छूटना तो सरल है। ज्ञान जगा तो मोह छूट गया याने उल्टा ज्ञान न बने इसीके मायने है निर्मोहता, और विपरीत ज्ञान बने उसके मायने है मोह। सच्चा ज्ञान जग जाय। जीव जीव सब जुदे हैं, उनके कर्म उनके साथ हैं, मेरे कर्म मेरे साथ हैं, ये मेरे कुछ नहीं, मैं इनका कुछ नहीं। थोड़े

Version 1

दिनोके लिए ये आये, थोड़े दिनको मेरे साथ हैं। थोड़े ही दिनोंमें ये अपनी-अपनी करनीके अनुसार अपनी-अपनी गतिमें पहुंच जायेंगे। जब ऐसा ज्ञान होता है तो वहाँ ज्ञानप्रकाश है और वहाँ भीतरमें आकुलता नहीं हो सकती।

(८६) **सत्य आनन्दके लाभके अर्थ मनको शुभ कार्यमें नियन्त्रित कर आत्मधुन बनानेकी आवश्यकता**—आचार्योंने जो शास्त्रोंमें बताया है वह सब हमारी चाहके मुताबिक बताया है। हम सब लोग चाहते हैं आनन्द। तो उन्होंने जो कुछ बताया है वह आनन्द मिले ऐसे उपायको बताया है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि ये ग्रन्थ तो कष्ट हैं। इनका पढ़ना-लिखना, याद करना ये कष्टरूप हैं, विपत्तिरूप हैं, खूब खावो पियो मौज करो···, लेकिन ये शास्त्र इसीलिए बनाये गए कि आनन्द मिल जाय। जीव जो चाहता है उसीका ही इसमें वर्णन है, पर यह जीव भ्रममें समझता है कि आनन्द हमें इन इन बाह्य उपायोंसे मिलेगा। पर आनन्द मिलनेका उपाय केवल एक ही आन्तरिक है। हमारी वर्तमान परिस्थिति जो है उसमें सम्भवतया हम कर नहीं सकते ऐसा कि निरन्तर ज्ञानमें ही मग्न रहें, यह मन उचकता है। तो कर्तव्य होता है कि इस मनको अच्छे काममें शुभ काममें लगायें और बीच-बीच यथासमय फिर अपने उपयोगको अपने आत्मामें लगाते रहे, ऐसी जीवनचर्या होनी चाहिए। इस मनको बन्दरकी उपमा दी है साहित्यकारोंने। जैसे बन्दर बड़ा चंचल होता है, वह स्थिरतासे बैठ नहीं सकता। कभी हाथ हिलायेगा, कभी पैर हिलायेगा, कभी सिर हिलायेगा, कभी अपनी आँखें मटकायेगा, अपनी आँखकी टोपी कभी ऊपर कभी नीचे करता रहता है। यों बन्दर बड़ा चंचल होता है, वह कभी स्थिरतासे नहीं बैठता है। तो जैसे बन्दर चंचल होता है इसी प्रकार मनको बताया है कि मन बड़ा चंचल होता है। भला बतलाओ—पुराणों में एक कथन आता है कि भगवानके सामने जाकर किसीने पूछा कि इस समय अमुक मुनिके कैसे भाव हैं ? वह मोक्ष कब जायगा ? कुछ भी पूछा, तो वहाँ बताया कि अभी एक क्षण पहले तो ऐसे भाव थे कि मरता तो नरक जाता और क्षणभरमें बताया कि ऐसे भाव हुए कि मरण करे तो स्वर्ग जाय। बड़े-बड़े लोगोंके ऐसे भाव परिवर्तित होते हैं। तो इस मनको मर्कट बताया सो ठीक बात है। तो ऐसे मर्कट मनको वशमें करनेके लिए उपाय है—शुभोपयोग। न करे शुभोपयोग तो सामर्थ्य तो नहीं है शुद्धोपयोगकी, सो अशुभोपयोगमें जायेंगे। तो शुभोपयोग होता रहे, किन्तु शुद्धोपयोगकी धुन बनाये रहें, ऐसा वातावरण होना चाहिए।

(८७) **मनको नियंत्रित कर देनेमें संतोषके अवसरका एक दृष्टान्त**—एक राजाको एक देवता सिद्ध हो गया सो कहा—राजन्, हम तुमपर प्रसन्न हैं। हम सिद्ध हो गए हैं, तुम काम बताओ हमको। जो भी काम बताओगे उसे तुरंत कर देंगे, और यदि काम न बताओगे

तो तुम्हें मार डालेंगे। ऐसा कठिन देवता सिद्ध हो गया। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, सोचा कि बहुत बड़ा कमाऊ देवता मुझे मिल गया, सो काम बताने लगा। अच्छा, बगीचा तैयार कर दो, तैयार हो गया।...काम बताओ।...एक तालाब तैयार कर दो, तैयार हो गया,...काम बताओ,...सड़क बना दो, बन गयी,...काम बताओ। अब राजाको विशेष चिन्ता हुई कि यदि काम न बतावेंगे तो यह मुझे मार डालेगा, और पुरानी याद आ गई कि मैं व्यर्थ खुश हुआ था, यह तो मेरे लिये काल बन गया। बहुत चिन्तित रहे और बताता जाय। एक बार उसे एक उपाय सूझ गया। कहा—कोई ५० हाथ लम्बा लोहेका डंडा गाड़ दो, गड़ गया, ...काम बताओ।....बंदर बन जाओ। बन गये, काम बताओ, इसमें एक ७० हाथ लम्बी पतली जंजीर एक सिरेमें बांध दो।...बांध दिया, काम बताओ।....जंजीरका एक सिरा अपनी गर्दनमें बांध लो।....बांध लिया।...काम बताओ।....देखो जब तक हम तुम्हें मना न करें तब तक तुम इसमें चढ़ो व उतरो। लो वह चढ़े तो उतरनेका काम बाकी और उतरे तो चढ़नेका काम बाकी। आखिर वह देवता बड़ा परेशान हो गया और माफी मांगने लगा— राजन्, माफ करो, हमें छोड़ दो, जब तुम हमारी सुध लोगे तब हम आकर तुम्हारी इच्छाके माफिक काम करेंगे। तो जैसे कठिन देवताको वशमें करनेका उपाय राजाने यह पाया कि ऐसा काम बता दिया कि जिससे वह खाली बैठ ही न सका। तो ऐसे ही मनको अच्छे काम में लगाये रहें, दीन दुःखियोंका उपकार, धार्मिक वृत्तियां, धार्मिक संस्थाओंके कार्य सब कुछ करें पर अपने उद्देश्यको न भूलें। इन संस्थाओंके काम करनेके लिए, समाजके काम करनेके लिए हम जिन्दा नहीं हैं यह निर्णय रखें। ये तो काम परिस्थितिवश करने पड़ रहे हैं, कोई चारा नहीं है। मनको कहां लगायें? आत्मज्ञान और आत्मस्थिरताका उपाय बनानेके लिए मेरा जीवन है। इस उद्देश्यको न छोड़ें। अगर यह उद्देश्य छूट गया तो संस्था या परोपकार या दीनोंका उपकार ये सब मेरे लिए मात्र श्रम रहेंगे, लाभ न पायेंगे।

(८८) **शुभोपयोग करनेपर भी शुद्ध तत्त्वकी भावनामें कल्याण**—खाना खाने वाले लोग भी तो मिठाई खाते खाते जब विशेष नहीं खा पाते तो थोड़ा रूखा, चटनी, नमकीन आदिक खाते हैं, और रुचि ऐसी रखते हैं कि खाना मिठाई ही है, और खा नहीं सकते तो थोड़ा चटनी, नमकीन वगैरह बीच बीचमें चलती है। तो ऐसे ही समझिये कि हमारे लिए ये सब कार्य एक परिस्थिति कराती है। चाहिए तो यह था कि कुछ भी न करना पड़ता और एक अपने आत्मामें ही हम मग्न रहते। नहीं कर सकते तो उपकार, शुभोपयोग ये कर लें, पर धुन रहनी चाहिए कि मनुष्य-जीवन पाया है तो आत्मज्ञान, आत्मश्रद्धान और आत्मरमणका उपाय बनानेके लिए पाया है। यों जिसकी चर्या रहती है वह अपनेमें संतोष पाता

है यहां वहां चलने भागनेके बाद फिर अपने घर आता है, अपने धाममें आता है, तृप्ति लेता है और फिर परिस्थितियां प्रेरित करती हैं, लग जाता है, फिर वापिस आपमें आता है। तो ऐसा हमारा शुभोपयोग, शुद्धोपयोग दोनों रूपसे हमारा जीवन चले तब हम भ्रष्ट भी न होंगे, हम पात्र भी रहेंगे और आत्मसाधनामें सफल भी हो सकेंगे। अब वैसे भी देखें, ईमानदारीकी चर्या, रात दिनमें २४ घंटे होते हैं और पुरुषार्थ कितने बताये हैं—४, धर्म अर्थ, काम और मोक्ष। अब २४ घंटेके ४ भाग कर लेनेपर ६-६ घंटेका समय इन चारों कार्योंके लिए निकलता है। ६ घंटे धर्मकार्योंके लिए, ६ घंटे अर्थकार्योंके लिए, ६ घंटे काम कार्योंके लिए और ६ घंटे मोक्षकार्योंके लिए। आजकल मोक्ष पुरुषार्थ नहीं बन पाता और जितना बनता उतना धर्ममें शामिल है तो उसकी जगहपर रख लो आपका मनपसंद एक काम। बतायें, क्या? निद्रा लेना (हंसी)। तो अपने इस रात दिनके २४ घंटेमें अपनी ऐसी एक चर्या बनायें कि जिससे ये चारों काम बराबर कालविभागसे चलाये जा सकें और अपने इस दुर्लभ मानव-जीवनको सार्थक बनाया जा सके।

(८६) चैतन्यकुलमें सहज आनन्दकी स्वाभाविकी रीति— अब विचारिये तीसरी धुन—मैं सहजानन्दमय हूं। सहजानंदमय। सहज किसे कहते हैं? सहजायते इति सहजं जब से मैं हूं तबसे ही जो मेरे साथ हो उसे सहज बोलते हैं। मैं कबसे हूं। अनादि कालसे हूं। जो अनादि कालसे मेरे साथ हो वह कहलायगा सहज। साथ ही साथ हो और साथ ही साथ रहने वाला मैं हूं अनादिकालसे, और तभीसे ज्ञान, दर्शन, आनंद, सभी स्वभाव, सभी शक्तियां सभी गुण अनादिसे हैं। तो ऐसा जो आनन्द भाव है, जो आनन्दकी परिणतियोंका स्रोतभूत है उस आनन्दरूप मैं हूं। जगतमें जो सुख देखा जाता है वह भी आनन्दकी परिणति है और जो दुःख देखा जाता है वह भी आनन्दकी परिणति है। और, प्रभुके जो आनन्द पाया जा रहा है वह भी आनन्दकी परिणति है। आनन्द है एक गुण, शक्ति। उसकी विकृत पर्याय है सुख और दुःख किन्तु शुद्ध पर्याय है आनन्द। शुद्ध पर्याय चूंकि गुणके ही समान अनुरूप है इसलिए गुणका भी नाम वही और शुद्ध पर्यायका भी नाम वही। सुख कहते हैं उसे जो ख को सु लगे। ख मायने इन्द्रिय और सु मायने सुहावना। जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे उसका नाम है सुख। और जो ख को दुः लगे, इन्द्रियको बुरा लगे, असुहावना लगे उसका नाम है दुःख। वैसे जगत मे मेरे लिए, आपके लिए, किसीके लिए कुछ भी दुःख नहीं है। जब दुःख स्वरूपमें है ही नहीं तो मेरेको दुःख क्या? किन्तु ऊधम मचाते हैं इसलिए दुःख रहता है। वह ऊधम क्या? मैं अपनी कुलीनतामें नहीं रहता। मेरा कुल है चैतन्यभाव। हमारा बहुत बड़ा ऊँचा कुल है। उस कुलके अनुसार जब हम नहीं चलते और उस कुलके प्रतिकूल चलते हैं तो यह ही ऊधम

है। जैसे किसी बड़े कुलका लड़का ओछा व्यवहार करे तो लोग उसको नाम धरते हैं—अरे तू बड़े कुलका बालक होकर ऐसी गंदी बातोंमें आ गया ? तेरे कुलके माफिक तेरा बर्ताव नहीं है। तो इसी तरह हमारा कुल है चैतन्य और उस कुलके अनुरूप व्यवहार है ज्ञाता द्रष्टा रहना। ज्ञाता न रहकर जहाँ हम परमें कुछ निग्रह अनुग्रह करने चलते हैं, भाव बनाते हैं तो हम दुःखी हो जाते हैं।

(६०) **सहज आनन्दके लाभकी स्वाधीनता**—जिस कामको करनेमें हम समर्थ हैं, स्वाधीन हैं उसे तो करते नहीं और जो पराधीन काम हैं उनके करनेकी धुन बनाये हैं तो उसका फल है विफलता और क्लेश। जैसे दो पुरुषोंसे कहा गया कि तुम इस पर्वतपर पग-पगपर, प्रत्येक स्थलपर घूमकर आवो। अब पर्वतोंमें तो गाछ भी हैं, वृक्ष भी हैं, काँटे भी हैं, पत्थर भी हैं, कैसे घूमा जाय ? तो एक पुरुषने सोचा कि ऐसा करें कि पहले इस सारे पर्वत पर चमडा बिछा दें, फिर आरामसे उसपर दौड़ लगायेंगे। दूसरे पुरुषने सोचा कि मैं अपने पैरोंको घुटनों तक अच्छे जूते पहिन लेंगे फिर घूमेंगे। तो अब यह बताओ कि इन दोनों पुरुषोंमें सफल कौन होगा ? अरे सफल तो वही होगा जो जूते पहिनकर घूमेगा। न तो पर्वत पर चमड़ा बिछाया जा सकता, न दौड़ा जा सकता। अपने ही पैरोंमें जूते पहने और घूमे। हम चाहते हैं कि यहाँपर सभी जीव इस तरह चलें, यों परिणमें, मेरी इच्छानुसार चलें, पर ऐसा होनेका हमको कोई अधिकार नहीं। उनकी जुदी-जुदी कषाय है। वे अपनी इच्छाके अनुसार अपना परिणमन करेंगे। किसीमें धर्मप्रेम हो तो दूसरा इच्छानुसार चले या कोई स्वार्थ हो तो इच्छानुसार चले। और इतनेपर भी जो वह इच्छानुसार चला सो इसकी इच्छाके कारण नहीं चला, किन्तु स्वयंमें ही वैसा भाव उमड़ा कि अपने ही शान्तिलाभके लिए परिणति की। तो हम सब आनन्दस्वरूप हैं। कष्टका कोई नाम नहीं। एकको भी कष्ट नहीं, ऊधममें कष्ट है। तृष्णा लगी है। हजारसे लाख हों, लाखसे करोड़ हों तो तृष्णामें कैसे सुख हो सकता ? वह तो ऊधम है। जैनशासनका आदेश यह है कि तुम्हारा कर्तव्य है गृहस्थ हो इस कारण कि ५-६ घटे धन कमानेकी ड्यूटी करो और जो मिले उसके विभाग बना लो ४-६-१० भाग बनाओ उसमें इतना विभाग धर्मके लिए, इतना विभाग पालन-पोषणके लिए, इतना विभाग काज औसरके लिए। बस इसमें संतोष करे। और यह ही तपश्चरण है कि अगर विभाग इतना मिल पाया पालन-पोषणके लिए कि रूखा-सूखा खाकर रहना पड़े तो उसमें भी प्रसन्न हैं। कोई काम ही नहीं कष्टका, और फिर हमारे कोई विवशता भी नहीं है, सब खाते-पीते हैं, रहते हैं, पर जो दूसरोंको देखकर तृष्णा उत्पन्न होती है बस वह दुःखका कारण है। कष्टका नाम नहीं, कष्ट हम बनाते हैं, आनन्द सहज है। आनन्द बनाया नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता। वह तो जीवका स्वरूप है। कष्ट बनाया जाता है। इन्द्रियकी प्रवृत्ति है। परपदार्थं का लगाव है, परके संग्रहकी आवश्यकता समझी जा रही है। दुःख हो गया। और जो एक अपने ज्ञानानन्द स्वरूपको निरखकर तृप्त रहे कहाँ कष्ट नहीं तथा यह काम स्वाधीन है।

(९१) **कार्य करनेका भार अनुभव करनेमें हैरानी**—लोग चिन्ता करते हैं कि ये २-४ बालक अभी छोटे हैं, इनका तो मुझपर भार है, और यह ध्यानमें न रहा कि इन छोटे बालकोंका इस बापसे भी कई गुना अधिक पुण्य है, जिसके कारण इस बापको नौकर बनना पड रहा है। यह बात तो ध्यानमें लाते नहीं और चित्तमें यह बात बैठाये रहते हैं कि इनको तो मैं ही पालता हूं, मैं ही पुष्ट करता हूं। चिन्ता बना रखी है। जहां मिथ्या ज्ञान है वहां क्लेश है जहाँ सम्यक् बोध है वहाँ क्लेशका नाम नहीं। एक पुरुष धुनिया (रुई धुनने वाला) विलायत गया हुआ था वहांसे स्वदेश जलयानमें (पानीके जहाजमें) बैठकर लौट रहा था। जिस जहाजमें वह बैठा था उसमें हजारों मन रुई (कपास) लदी हुई थी। उस कपासको देखकर उस धुनियाको ये विकल्प उठने लगे कि अरे यह हजारों मन रुई हमें ही तो धुननी पड़ेगी। उसके दिलमें गम हो गया, सिरदर्द हो गया, बुखार भी आ गया। किसी तरहसे वह अपने घर पहुंचा। वहां उस धुनियाकी दवा करने अनेक डाक्टर आये, पर किसीके इलाजसे अच्छा न हुआ। एक बार कोई चतुर पुरुष आया, उसने कहा—क्या हम तुम्हारा इलाज करें ?····हाँ हां कीजिए। तो उसने सबको भगाया, अकेले वह ही रहा और रोगीसे बात करने लगा।··· कहांसे आये थे ?····विलायतसे।···किसमें बैठकर आये थे ?····पानीके जहाजमें बैठकर। उसकी आवाजसे ही पहिचान गया कि यहीं है कुछ निदान।···उस जहाजमें कितने आदमी थे ?····आदमी तो कोई न था, मगर उसमें हजारों मन रुई लदी हुई थी। वह सब समझ गया।···अरे तुम उस जहाजसे आये, वह तो आगेके बन्दरगाहपर जैसे ही पहुंचा, न जाने कैसे आग लग गई कि सारी रुई भी जल गई और जहाज भी जलकर भस्म हो गया। लो वह चंगा हो गया। तो उसके अब यह भाव आया कि हमारी आफत टल गई। अब मेरा धुननेका काम नहीं रहा। लोग विचार कर-करके बाह्य पदार्थोंमें अपनी चिन्ता बनाते हैं, आनन्दका घात करते हैं।

(९२) **तृष्णाको उपशान्त करनेका उपाय**—आजके जमानेमें करोड़ों मनुष्य अधिक दुःखी हैं। खानेको भी नहीं पूरता। दुष्कालके प्रभावसे भी प्रभावित हैं। कैसे रहते हैं ? भूखे रहते हैं। चिथड़ा भी नहीं है। थोड़ासा चिथड़ा लपेटे हैं। झोंपड़ी भी नहीं है, कितने दुःखी है ? उनकी अपेक्षा इन समागत पुरुषोंमें देखो लोग कई गुना सुखी हैं कि नहीं ? पर तृष्णा में दृष्टि जगती है इस बातपर कि हमसे ज्यादह धनिक तो ये अमुक लोग हैं, इनके पास कारें भी हैं, बंगले भी हैं, उन गरीबोंपर दृष्टि नहीं जाती। कोई पुरुष लखपति है, कदाचित् उसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

१ हजार रुपयेका टोटा पड़ गया तो वह बड़ा दुःखी होता है, उसकी दृष्टि उस १०००) पर ही रहती है, ९९०००) पर उसकी दृष्टि नहीं जाती। तो दुःखी होनेमें कारण हमारा ऊधम है। अन्यथा हम स्वभावतः आनन्दमय हैं। मेरेमें कष्टका नाम नहीं। एक १००) रुपये की पूंजीसे खोमचा लगाकर पेट भरने वाले व्यक्तिको कभी एक हजार रुपया मुनाफामें आये तो वह आनन्द मानता है—मुझे ये हजार रुपये मिले हैं। यदि तृष्णाको उपशान्त करना चाहते हो इन अनन्ते दुःखी जीवोंपर दृष्टि दो तथा वास्तवमें देखो तो सुख दुःख कहां है? जैसा ज्ञान करते हैं, जैसा विकल्प करते हैं वैसी सुख दुःखकी बात होती है। बाहरमें कहीं न सुख है, न कहीं दुःख है। हम अपने ज्ञानमें कुछ बात लाते हैं तो सुखी मान लेते हैं, कभी अपनेको दुःखी मान लेते हैं। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूं। मैं आनन्दसे रचा हुआ हूं। जैसे ज्ञानसे रचा हुआ हूं साथ ही आनन्दसे भी रचा हुआ हूं।

(९३) **ज्ञान और आनन्दकी परम मैत्री**—ज्ञान और आनन्दमें भेद नहीं है। जो यथार्थ ज्ञानकी वृत्ति है उसका ही नाम आनन्द है। आनन्दका अर्थ है—समन्तात् नन्दनं आनन्दः, नन्दन शब्द बना है टुनदि समृद्धौ धातुसे। टु का लोप हो जाता है, इ का लोप हो जाता है बीचमें नुम (न्) का आगम हो जाता, शप् (अ) लग जाता, नदका नन्द हो जाता। फिर रूप बनता—नंदन आ समन्तात् नन्दनं आनन्दः। आनन्दका अर्थ है—चारों ओरसे समृद्धिशाली बनना। समृद्धि अर्थमें है यह नद् धातु। जो पुरुष सही ज्ञानसे सम्पन्न होता है वह पुरुष चारों ओरसे सर्व प्रदेशोंमें समृद्धिसे भरपूर हो जाता है। तो ज्ञानघन होना सो ही आनन्दका अनुभव करना है। ज्ञाता द्रष्टा रहना यह ही निराकुल दशा है। तो अभेददृष्टिसे मैं ज्ञानमात्र हूं। अगर आनन्द मात्र भी कहूं तो कुछ हर्ज तो नहीं, लेकिन ज्ञानके बिना आनन्दकी खबर कौन ले? और ज्ञानके बिना आनन्दका अनुभव कौन करे? ज्ञान तो अनिवार्य चीज है। आनन्दको ज्ञान गर्भित कर देनेपर देखो जो ज्ञानका स्वरूप वर्तन है उसमें कष्ट का नाम भी नहीं। ज्ञान माने बिना बात चलती नहीं सो ज्ञानकी ओरसे भी देख लो वह ज्ञानकी ही एक कला है कि आनन्दमग्न होना। यह आनन्द जो एक वास्तविक आनन्द है वह निरपेक्ष विधिसे होता है। किसी भी परपदार्थकी अपेक्षा हो तो यहां आनन्द प्रकट नहीं होता। आनन्दका निरपेक्ष स्वरूप है। और जो आनन्दरूप नहीं सो सब क्लेश है।

(९४) **वैषयिक सुखमें आनन्दका अभाव**—वैषयिक सुखोंमें सर्वत्र क्लेश ही है। उदाहरण रूपमें एक खानेका ही सुख लो, तो माना तो जाता है सुख, मगर भीतरमें क्षोभ होता है कि नहीं। जब कोई चीज अच्छी लगती होगी तो भीतरमें यह स्वभावसे च्युत होता है कि नहीं? क्षुब्ध हो गया। सुखमें भी क्षोभ, दुःखमें भी क्षोभ। क्षोभके कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुखका यत्न करते हैं और सुख पानेके बाद भी क्षोभ। लोककी कोई भी स्थिति आनन्दमय नहीं है। सर्वक्लेश मय है और आत्माकी सहज स्थिति विशुद्ध आनन्दमय है। मोह रागद्वेष तजो और आनन्द लो। रागद्वेष नहीं तज सकते तो मोह तज लो, आनन्द लो। मोह इसी का ही तो नाम है कि मान लिया कि यह मैं हूं, यह मेरा है। बात यदि सच है तो मोह करो, कुछ हानि न होगी। वही धर्म बन जायगा, क्योंकि सत्य बात है, पर सत्य कहाँ है? आपका क्या है यहां? कुछ कह सकते क्या? न स्थूल रूपसे कह सकते और न सिद्धान्तके रूपसे कह सकते। मेरा परमें अत्यन्ताभाव है। फिर कौन पर मेरा है? सब पर दुःख आया? क्यों आया कि सब एक ही किस्मके रोगसे रोगी है। मोह राग रुष दुःखकी खान। रोग हो तो रोगीका चित्त अपथ्य खानेपर ज्यादा चलता है। जो चीज नुक्सान करती हो वह चीज अधिक रुचती है। किसीको वायुका रोग है तो छिलका रहित उड़दकी दाल उसे मीठी लगती है। उससे ही तो वह रोग बना और वही खानेका मन करता है। तो उससे कहीं वह रोग दूर हो सकेगा? ऐसे ही जिस मोहके कारण इस जीवको दुःख उत्पन्न होता वही मोह करके यह जीव अपना दुःख मिटाना चाहता है तो उसका यह मोहजन्य दुःख कैसे दूर हो सकता है? जिस प्रकार खूनका दाग खूनसे धोनेपर नहीं मेटा जा सकता इसी प्रकार मोहजन्य दुःखको मोहका ही उपाय करके नहीं मेटा जा सकता। मोहका दुःख मिटेगा ज्ञानसे। दुःख मिटा तो आनन्द ही आनन्द। बनावट दूरकी तो आनन्द ही आनन्द। ऊधम दूर किया तो आनन्द ही आनन्द।

(९५) **मोहजक्लेशको मोहोपायसे मिटानेकी अज्ञानियोंकी चेष्टा**—भैया! अपने आत्मा में विशुद्ध विश्राम है तो अपने स्वरूपमें है। वहाँ कोई कष्टकी बात ही नहीं है। अन्यथा जैसे ही मोहबुद्धि हुई, विकल्प हुआ कि बस कष्ट ही कष्ट है उसे। कोई एक सेठ दरिद्र हो गया तो उसने सोचा कि अब बहुत दूर देशमें व्यापार करने जाना चाहिए। मानो वह आपके महाराष्ट्र प्रान्तका था और चला गया कलकत्ता (बंगाल) वहाँ उसका व्यापार ऐसा जमा कि १४ वर्षों तक उसे घर आनेका मौका न मिला। वह अपने घरमें अपनी स्त्री तथा एक वर्षके पुत्रको छोड़कर गया था। जब पुत्र सयाना हो गया, विवाह करने योग्य हो गया तो इधरसे उस सेठ की स्त्रीने अपने पतिके लिए एक पत्र लिखा कि अपना पुत्र सयाना हो चुका है, आप घर आ कर उसकी शादी कर जाइये। सो उधरसे वह सेठ अपने घरके लिए रवाना हुआ। उस समय यातायातके यांत्रिक साधन न थे बग्घियोंके साधारण साधन थे। और इधरसे उस स्त्रीने अपने पुत्रको अपने पतिका पता देकर कहा कि तुम इस पतेपर पहुंचकर पिताजी को लिवा लावो। सो उधरसे वह सेठका पुत्र भी रवाना हुआ। रास्तेमें दोनों किसी नगरमें एक ही धर्मशालामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पास पासमें कमरेमें ठहरे। दोनों ही एक दूसरेको देखते, पर अपरिचित होनेके कारण एक दूसरेको पहचान न सके। सेठ कई दिनोंका थका हुआ था सो धर्मशालाके चपरासीको कुछ इनाम देकर कहा कि मुझे आरामसे रात भर रखना, मेरे आराम करनेमें कोई बाधा न आने पाये। पर वहां हुआ क्या कि सेठके पुत्रके पेटमें दर्द होना शुरू हो गया। रात्रिके ६ बज रहे थे। सेठने अपने आराम लेनेमें उसे बाधक जानकर चपरासीको बुलाया और कहा इस बालक को यहांसे उठाकर कहीं दूर कर दो, हमें नींद नहीं आ रही।···अरे कहां ले जायें? रात्रि काफी हो गई है। ····अरे ले जाना होगा, मैंने इनाम तुम्हें इस बातके लिए दिया है कि मुझे रात्रि भर आरामसे रखो। खैर चपरासीने उस लड़केको पासके किसी कमरेमें कर दिया। वहां हुआ क्या कि उस लड़केके पेटका दर्द इतना बढ़ा कि वहीं उसका प्राणान्त हो गया। उस दृश्य को वह सेठ भी देख रहा था पर उसकी आंखोंसे एक भी अश्रु न गिरा। दूसरे दिन वह सेठ जब घर पहुंचा तो स्त्रीने बताया कि बच्चेको आपके पास आपके लिवानेके लिए भेजा है। वह सेठ तुरन्त बच्चेका पता लगाने लौट पड़ा। पता लगाते लगाते उस धर्मशालामें भी पहुंचा जिस में वह ठहरा था। मैनेजरसे पूछा—कोई इस नामका बालक तो यहां नहीं ठहरा था। रजि-स्टर उठाकर देखा तो कहा—हां ठहरा तो था। ····वह कहां गया? ···वह गया कहां? उसका तो पेट दर्द होनेसे यही प्राणान्त हो गया। प्राणान्तकी बात सुनकर सेठ मूर्छित होकर गिर पड़ा। देखिये जब बच्चा आंखोंके सामने मर रहा था तब तो एक भी अश्रु न गिरा और जब बच्चा सामने नहीं है मूर्छित होकर गिर पड़ा। यह फर्क किस बातका आया?····यह फर्क है मोहका। जब सोचा कि अरे वह तो मेरा ही बेटा था जो मेरे आंखोंके सामने मरा था तो वह मूर्छित हो गया। तो ऐसा कठिन है यह मोह। इस मोहसे उत्पन्न हुआ दुःख मोह करके नहीं मेटा जा सकता। तो इस ममतासे ही दुःख है और ज्ञानसे ही आनन्द है। हर जगह घटाते जावो, सर्वत्र मिथ्या ज्ञानका ही क्लेश है।

(६६) अविकारस्वभावी ज्ञानमूर्ति भगवान आत्माकी उपासनामें सहज आनन्दका अभ्युदय—मैं तो सहज आनन्दस्वरूप हूं। एक अपने आपको ही सम्हाल लूं तो सभी जीव सम्हले हुए हैं। सबके साथ कर्मोदय है। यथार्थ बात समझ लें तो इसकी चिन्तायें दूर होती हैं। फिर अपने आपमें ही विश्राम पाये। अपनेको देखो कि मैं सहज आनन्दस्वभावी हूं। कष्ट है विकार। और किसी भी वस्तुमें अपने आप विकार होता नहीं। परसंग पाये बिना विकार हो नहीं सकता। कुन्दकुन्द भगवानने स्पष्ट बताया है कि 'जह फलियमणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रायमादीहिं। रंगिज्जदि अण्णेहि दु सो रागादीहि दोसेहिं।' अमृतचन्द्र सूरि ने भी स्पष्ट कहा है कि "यथा खलु स्फटिको पलः स्वयं परिणामस्वभावत्वेऽपि स्वस्य शुद्धतया

Version 1

स्वयं रागादिभिर्न परिणमते, किन्तु स्वयं रागादिभावापन्नतया परद्रव्येणैव स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन रागादिभिः परिणमते । तथायमात्मा" इत्यादि । जैसे स्फटिक पाषाण है वह अपने शुद्ध स्वच्छ स्वभावको लिए हुए है। वह अपने आप लाल पीला आदिक रूप नहीं परिणमता । वह अपना एकत्व लिए हुए है । वह तो किसी लाल पीली आदिक चीजका निमित्त पाकर उसरूप परिणम जाता है । यही बात इस आत्मतत्त्वकी है । न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः । तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति यथार्ककान्तः ॥ अर्थात् यह आत्मा शुद्ध स्वच्छ स्वभाव वाला है, यह स्वयं अपने आपकी कषायोंका निमित्त नहीं बन सकता । होता क्या है कि जो स्वयंमें क्रोध है, मान है ऐसी जो प्रकृति है वह है इस आत्माके क्रोध, मान आदिकका ज्ञानविकल्पके माध्यमसे निमित्तभूत । उसका उदय है । उस समय उन कर्मोंमें स्वयं खलबली है । उसके विकल्पसे जीवमें खलबली नहीं होती क्या ? क्षोभ दोनों जगह है, भले ही उसका अनुभव न कर सके कर्म, पर खलबली तो होती हैं । जब कानमें नींबूका रस या कोई रसायनकी चीज डाली जाती है तो वहाँ एक उफान आता है, पर उसका अनुभव नहीं कर सकता कान, पर उफान आना, क्षुब्ध होना यह बात जीवमें भी होती है, अजीवमें भी होती है । जैसे कोई चूनेका डला ६ महीनेको म्याद वाला है वह तो उसका उदय है, पर उसमें पानी पड़ जाय तो वह जल्दी ही पिघल जाता है । तो यह उसकी उदीरणा हो गई, ऐसे ही ये कर्म जो पहिले बँध रहे थे उनमें अनुभाग उसी समय निश्चित हो गया था । जब उदयकाल आया तो वह अनुभाग फूट पड़ा, विस्फोट हो गया । जैसे मानो बम फूटा । कर्म फूटा, कर्ममें विस्फोट हुआ । अब एक क्षेत्रावगाह है यह जीव । तो मेरेमें जो कुछ कर्मका रंग है, जो कुछ भी विष है, जो भी उसका अनुभाग है वह यहाँ न्यक्कारारूपमें झलका और तुरन्त ही यह स्वभावसे च्युत हो गया और च्युत होकर फिर उसको अपनाने लगा । विकार बन गया, आनन्दका घात हो गया । कोई बच्चा पीछेसे जोर से डरानेके लिए एकदम बोल दे तो धधक जाता है ना । उस धधकमें होता क्या है कि हम अपने स्थानसे खिसक गए और उस उपयोगमें लग गए । यह ही बात तो उस कर्मके ऊधममें होती है उस विकारसे निज भगवान आत्माको देखो, सहज आनन्दका अभ्युदय होगा ।

(६७) **जीवविकारके निमित्तभूत कर्मोंकी वास्तविकता**—ये कर्म काल्पनिक नहीं हैं । कल्पनासे बनते तो जरूर हैं, मगर बननेके बाद फिर कहें कि वे तो काल्पनिक हैं, उन पर निमित्तका उपचार किया जाता है । ये उपचार वाले निमित्त नहीं हैं । रोटी सिकती है तो आगपर निमित्तका उपचार है क्या ? यह उपचार वाली बात नहीं है । वहाँ निमित्त पाकर उपादानमें अपना प्रभाव होता है । हाँ स्वतंत्रता अवश्य है कि रोटी अपने आपके शीत

http://www.jainkosh.org

पर्यायको छोड़कर उष्ण पर्यायमें आयी, कच्ची अवस्था त्यागकर पक्की अवस्थामें आयी यह रोटीकी अवस्था आगसे नहीं आयी। अग्नि और रोटी दोनों नहीं पकी। पकी रोटी, पर परसंग बिना यह विकार नहीं बन सकता। जीवके विकारमें तीन प्रसंग आया करते हैं—उपादान, निमित्त और आश्रयभूत। ग्रन्थोंमें आश्रयभूतको भी निमित्त कहते हैं और निमित्त को भी निमित्त कहते हैं। जैसे सम्यक्त्वका निमित्त है ७ प्रकृतियोंका उपशम आदिक। और यों भी तो लिखा है कि सम्यक्त्वका निमित्त है जिनबिम्बदर्शन, देवदर्शन, वेदनानुभव, परोपदेश। निमित्तकी बात कहते तो हैं मगर विवेक करना चाहिए कि वास्तविक निमित्तके लिए यह निमित्त शब्द कहा है और आश्रयभूतके लिए यह निमित्त शब्द कहा है। दूध दूध सबका नाम है। बरगदके पेड़से भी दूध निकलता है, गाय, भैंस वगैरहसे भी दूध निकलता है, और एक आकका पेड़ होता है उसमें भी दूध निकलता है। नाम धर दिया दूध, इसका भी है उसका भी है, पर पीने वाला विवेक रखता है ना कि यह आकका दूध तो कांटा निकालनेके लिए है और गाय भैंसका दूध यह पीनेके लिए है। तो यहां भी विवेक रखना होगा कि जिनबिम्बदर्शन या नौकर-चाकर या पुत्र मित्र जो प्रेमके, क्रोधके कारण बनते हैं, वे आश्रयभूत कारण हैं। निमित्त कारण तो उस प्रकारका कर्मोदय है।

(६८) **निमित्तकारणका समुचित वर्णन स्वभावदृष्टिके लिये**—ग्रन्थोंमें निमित्त कारणकी बात बताकर स्वभावदृष्टि करायी गई है कि यह नैमित्तिक भाव है, तेरा सहज उत्पन्न होने वाला भाव नहीं है। तू उनमें राग मत कर। तू अपने स्वभावको पहिचान। आनन्दका घात यों ही तो किया जा रहा है। भले ही कर्मोदय हो। यदि ज्ञानबल इतना है कि हम आश्रयभूतमें उपयोग नहीं जुड़ाते तो व्यक्त विकार तो बनेगा ही। अव्यक्त विकार में आश्रव बंधकी विशेषता नहीं। इसीलिए तो चरणानुयोगकी सेवा है ? तो स्वभावदृष्टि करना है, उसमें ही आनन्द मिलता है। परदृष्टिमें अनात्मतत्त्वको अपनानेमें आनन्दका घात है। तीन तरहके जीव हैं ना बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो देह जीवको एक माने सो बहिरात्मा याने जो बाहरकी चीजोंको आत्मा माने सो बहिरात्मा। जो अन्दरके स्वरूपको आत्मा माने सो अन्तरात्मा याने ज्ञानानन्दस्वभावमात्र अपनी प्रतीति रखे सो अन्तरात्मा और जो परम हो गया आत्मा सो परमात्मा। परमका अर्थ है परा मा लक्ष्मी विद्यते यत्र सः परमः परमश्चासौ आत्मा चेति परमात्मा। परमात्मत्व प्रकट होता है नित्य अन्तःप्रकाशमान चित्स्वभावकी उपासनासे। चित्स्वभावकी उपासनाकी प्रेरणा निश्चयदृष्टिसे मिलती है, क्योंकि निश्चय दृष्टिमें किसी भी अन्यका लक्ष्य नहीं है। इसी प्रकार चित्स्वभाव की प्रेरणा व्यवहारदृष्टिके निर्णयसे भी मिलती है, क्योंकि व्यवहारनयने यह बताया कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकारनैमित्तिक है, परभाव है, *आत्माका स्वभाव नहीं*। ऐसा निरखने वाला पुरुष वही तो होता है जिसने स्वभावका परिचय किया है। सो वह नैमित्तिक भावसे हटकर सहजभावमें उपयुक्त हो जाता है।

(९९) आत्माका स्वरूप और अभिन्न कर्तृत्व—मैं क्या हूं ? क्या करता हूं ? क्या भोगता हूं ? मेरा क्या है ? इन चार प्रश्नोंका सही उत्तर पा लेनेमें आनन्दका मार्ग मिलता है। मैं क्या हूं ? मैं ज्ञानज्योतिर्मय पदार्थ हूं। जिसके साथ श्रद्धा, चारित्र, आनन्द आदिक सभी लगे हुए हैं, मेरा क्या है ? मेरा स्वरूप सो ही मेरा है। मेरा वह है जो मेरेसे कभी अलग नहीं होता। जो मेरेसे अलग हो जाय वह मेरा क्या ? लोग घरको क्यों मानते कि यह मेरा है ? उन्हें यह विश्वास है कि इस घरको कोई छुड़ा नहीं सकता। इस घरसे मुझे कोई निकाल नहीं सकता। इसकी नगरपालिकामें रजिस्ट्री हो गई है। मान लिया है कि यह मेरा है, पर यह भी तो छूटेगा। मेरा क्या है ? मेरा स्वरूप मेरा ज्ञानानन्द वैभव। मेरा निज अंतः प्रकाशमान जो सहजस्वरूप है वह मेरा है। इस सहज स्वरूपका जिसने भान किया, इस सहजस्वरूपमें जिसकी रुचि जगी, इस सहजस्वरूपकी ओर जो नम्र हुआ वह पवित्र पुरुष है। मेरा केवल एक ज्ञानानन्द वैभव है। मैं क्या करता हूं। केवल अपने आपके परिणामको करता हूं। इससे बाहर कुछ करनेका सामर्थ्य नहीं। वस्तुस्वभाव ही यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपका ही परिणमन करने में समर्थ होगा। परको मैं करता हूं। यह भ्रम क्यों लग गया, इसमें तथ्य तो है निमित्तनैमित्तिक भाव पर उससे बढ़कर चले तो कर्तृकर्मभावमें आ गए।

(१००) मेरे परमें कर्तृकर्मत्वभावका अभाव—कर्तृकर्मभावकी बुद्धि मिथ्या है, निमित्त नैमित्तिकभावका संदर्शन सम्यक् है। मेरा बाहरमें कुछ भी नहीं, क्यों नहीं कि वह मेरे साथ नहीं है। मैं उनकी परिणति नहीं कर पाता। और उनको भोग भी नहीं पाता। मैं सबसे निराला अपने आपमें रहता हुआ अपनी ही तरंगोंसे बना रहता हूं। मैं परपदार्थको जानता हूं। इतना भी तो कर्तृकर्मत्व नहीं है। मैं जानता हूं इसका अर्थ यह है ज्ञान जो गुण है उसके अनुरूप परिणमता रहता हूँ। परको जानता नहीं, क्योंकि जाननेका आधार है ज्ञाताका प्रदेश। जाननेकी क्रियाका आधार है आत्माका प्रदेश। कहीं प्रदेशको छोड़कर क्रिया हुआ करती है ? कोई भी जगह देख लो। कुल्हाड़ीकी क्रिया, चाकूकी क्रिया, चाकूको छोड़कर कहीं अन्यत्र हो जाती है क्या ? मेरी क्रिया मेरेको छोड़कर अन्य जगह कहाँ होगी निराधार ? तो मेरी जानन क्रिया है, वह मेरे प्रदेशमें ही है। यह मेरी कला है कि मैं जानता रहता हूं और जगतमें जो जैसा पदार्थ है वैसा जानता रहता हूँ। ऐसा जानने पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
भी किसी भी पदार्थने मेरेमें कुछ लाया नहीं, मैंने परपदार्थोंमें कुछ किया नहीं। ऐसा ही सहज योग है कि मैं जानता रहता हूं। और ऐसा जानता रहता हूं जैसे कि जगतमें पदार्थ। अब यहां यह कहना कि मैं पर पदार्थको जानता हूं, यह व्यवहार है और वो उपचार है। और बूढ़े कर्तृकर्म भाव है। कर्तृकर्मभावरूपमें ऐसा ही कोई सही माने तो मिथ्या है। कहनेमें दोष नहीं, कहनेकी संक्षिप्त भाषा ही यह है, अगर ऐसा ही कोई सही समझले कि मैं इन पदार्थोंसे जानन क्रियाको प्रेरित करता रहता हूं सो बात गलत है। मैं अपने आपमें रहता हुआ ही जानता रहता हूं। कर्तृकर्मभाव नहीं है।

(१०१) दृष्टान्तपूर्वक अन्योन्यकर्तृत्वके उपचारके मिथ्यापनका दिग्दर्शन—भींतपर यह लाल रंग पुता है तो कहते हैं लोग कि इसने भींतको लाल कर दिया या यह लाल रंग भींतका है। वस्तुतः ये दोनों बातें गलत हैं। लाल रंगने भींतको लाल कतई नहीं किया, किंतु किया क्या कि लाल रंगने अपने ही प्रदेशोंमें इतना फैलाव बना लिया। भींतका कुछ नहीं किया। यह रंग था डलेके रूपमें। पानीका सम्बन्ध पाकर यह रंग बहुत पतला फैल गया। तो जो उसके रूपमें था वही पतला फैलकर ऐसा बन गया। इसने अपने आपका फैलाव किया, भींतका कुछ भी नहीं किया। वह तो इस लाल रंगका ही लालरंग है, भींतका लाल रंग नहीं है। तत्त्वदर्शी पुरुष ऐसा जानता है। कहनेको तो कहा ही जाता है। ऐसे ही मेरे ज्ञानमें विषयभूत हुए हैं पर पदार्थ, पर मैंने पर पदार्थोंको जाना सो बात नहीं। मैंने अपने आपको ही जाना, पर यह व्यवहार हम क्यों करते हैं कि इस चौकीको विषय करते समय मैंने क्या किया है? इसको बतानेका और कुछ उपाय नहीं है। यही कहना पड़ेगा कि मैंने चौकीको जाना। मेरे जाननेमें चौकी विषयभूत हुई और मेरा जानना भीतरमें इस तरह चल रहा, इसको बताने वाला शब्द क्या है? बस यह ही शब्द है यह ही व्यवहार है।

(१०२) आत्मतत्त्वकी सुध भूलकर परमें उपयुक्त होनेका दुष्परिणाम—निश्चयसे मैंने अपनेमें अपने आपका जानन किया अपनेमें अपने ज्ञानका विकल्प किया। अपनेमें अपने ज्ञानके अनुसार क्षोभ, शान्ति, आनन्द किया। इसका किसी परके साथ रंच भी सम्बंध नहीं है। पर वाह रे मोह, तुमने अनादिकालसे अब तक भटकाया, मैं अपने ऐसे निर्लेप आत्मतत्त्वकी दृष्टिमें न ले सका। व्यर्थ क्रिया की, व्यर्थ समय खोया, व्यर्थ विकल्प किया, फल यह मिला कि नाना दुर्गतियोंमें जन्ममरण करके दुःख उठाया। एक ही कर्तव्य है इस जीवनमें करनेका कि सबसे निराले इस अंतस्तत्त्वके दर्शन कर लें। इसीमें बुद्धिमानी है, चतुराई है, इसके सिवाय बाकी कितने ही अड़ंगे बनें, उनमें इस जीवको कुछ भी सारकी बात नहीं है। आनन्दका धाम है यह स्वयं आत्माराम। केवल आनन्दधाममें ही बसे तो इसका आनन्द सामने है। और,

Version 1

आनन्दधामको छोड़कर बाहरी बातोंमें कर्तृत्व भोक्तृत्वका विकल्प करे तो क्लेश संक्लेश है। मनके विषयको बढ़ाया, लोग मुझे अच्छा समझें, व्यर्थका विकल्प किया। हो ही नहीं सकता ऐसा, और हो ही जाय तो उसे क्या मिला? तीन लोकके जीव भी कदाचित् प्रशंसा कर दें तो भी उससे मेरेको क्या मिलता है? कुछ भी नहीं। भगवंत प्रभु इस अंतः परम तपश्चरण के प्रसादसे हुए हैं। अपने स्वरूपको अपनेमें समाये रखना, अपनेसे बाहर न जाना, यह ही विधि थी, तो प्रभुता पायी। इसके लिए पहले कुछ यथार्थ बोध चाहिए। और क्रोध, मान, माया, लोभको दूर करना चाहिए।

(१०३) **धर्मप्रकारमें धर्मपालनकी विधिका संकेत**—धर्मपालनकी विधि यह दशलक्षण धर्मका क्रम बता देता है। क्रोध, मान, माया, लोभ इनका परिहार करें तो इससे सत्य उत्पन्न होगा। जब तक कषाय है तब तक सत्यका विकास नहीं है। हो ही नहीं सकता। आपेक्षिक सत्यको कोई सत्य मान ले वह बात अलग है मगर वास्तविक सत्य तब ही प्रकट होता है जब कषायें दूर होती हैं। सत्य प्रकट हुआ अर्थात् स्वच्छता प्रकट हुई तो इसमें वास्तविक संयम पात्रता होती है। जैसे आक्सीका काँच जिसको सूर्यके आगे करनेपर, सूर्यकी किरणोंको केन्द्रित किए जानेपर नीचे रखी हुई रुई अथवा कागजके टुकड़े जल जाते हैं। बालक लोग इसका बहुत खेल करते हैं। तो अगर वह कांच मैला है तो उसमें सूर्यकी किरणोंको केन्द्रित करनेका सामर्थ्य नहीं है। और न उसमें प्रतापका सामर्थ्य है। तो सबसे पहले उस कांचको साफ किया, स्वच्छ बनाया, फिर संयत कर दिया तो उसका फल यह होता है कि जो उसके नीचे प्रताप उत्पन्न होता है तब वह जलने लगता है, और जलकर अकिञ्चन रह जाता है। रहा कुछ नहीं। ऐसे ही क्रोध, मान, माया, लोभका मैल दूर करके सत्य उत्पन्न किया, फिर उस सत्यमें उपयोग का संयमन किया तो भीतरमें वह चैतन्यका प्रतपन होता कि यहाँसे मैलका त्याग होने लगता हैं तब यह अकिञ्चन बन जाता है। बाहर कुछ नहीं है इसका, जो है सो ही है, इस विधिसे यह ब्रह्मचर्य पदको पाता है अर्थात् आत्माको आत्मामें मग्न करनेकी पूर्ण स्थिति तब प्राप्त होती है।

(१०४) **निजएकत्वके परिचयमें आत्मबलका अभ्युदय**—जितना अपनेको अकेला समझा जाय उतना ही तो बल बढ़ता है और जितना अपनेको २ में ४ में मिला हुआ देखा जाय उतना ही इसका बल घटता है। कोई अकेला रह जाय तो लोग कहने लगते कि यह बड़ा अभागा है।....अरे अभागा है कि उसे पवित्रता प्रकट होनेका मौका मिला। अपनेको अकेला अनुभव करनेका मौका मिला है। अपनेको अकेला अनुभव करनेका सौभाग्य किसे प्राप्त हो सकता? संसारके विरले भव्य पुरुषोंको छोड़कर सारे जीव मलिन हैं, इनको यह सौभाग्य नहीं मिला कि वे अपनेको अकेला अनुभव कर सकें। अपनेको एक अकेला समझना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। देहसे भी न्यारा, कर्मसे भी न्यारा, क्रोधादिक भावोंसे भी न्यारा, तर्क तरंगोंसे न्यारा, ज्ञान की वृत्तियोंसे न्यारा सहज ज्ञानानन्द स्वभाव मात्र यह मैं अकेला हूं, ऐसी जिनकी दृष्टि पहुंची उनके सहज आनन्द प्रकट होता है करनेका यही काम है। स्थिर आसन करके श्वास नलीको सीधा रखकर कुकडू न बैठें, नमकर न बैठें, सीधा बैठकर और अपने आपकी दृष्टियोंको बन्द करके भीतरमें निरखें, सारे विकल्प छोड़ दें। जब सर्वत्र धोखा है तो मैं किसीको सोचूं ही क्यों ? विश्रामसे बैठ जायें, एक निर्विकल्प दशा होगी, मात्र सत्य आनन्दका अनुभव होगा, वह दशा न ठहरेगी, लेकिन उसके स्मरणसे सारा जीवन शान्तिमें व्यतीत होगा। जैसे कि संसारी मनुष्य बढ़िया पदार्थ खाते हैं, बहुत मधुर मिठाई खाते हैं, तो खानेके बाद कुछ रहता नहीं कि गलेमें कुछ अटका हो या जीभ पर हो। वह गया सो गया, मगर खाते समय जो उन्होंने मौज माना उस मौजका स्मरण करके बाकी दिन भी खुश होते रहते हैं। आज मैंने यह खाया। अरे खाया वह तो गया, रहा कहां, पर उसका स्मरण करके दिन भर खुश रहते हैं, यह तो यहांकी मायाकी बात है, पर जिसने अपनेमें उस सहज आत्मीय आनन्दका दर्शन किया, स्पर्श किया, अनुभव किया उसके स्मरणके प्रसादसे उस भव्यपुरुषके सम्वरकी पात्रता है, निर्जराकी पात्रता है, आनन्दकी पात्रता है, पवित्रता रहती है।

(१०५) अच्छा बुरा सब अन्दरमें खोजनेसे सही तत्त्वका निकाल—कुछ खोजना है तो अन्दरमें खोजना है। बाहरमें खोजनेका श्रम करना, दिमाग लगाना यह इसके लिए बेकार है। जहां एक कल्याणके प्रसंगकी बात कही जा रही उसमें यह ही निर्णय है, तो अपनेको अपनेमें परिपूर्ण निरखनेका काम पड़ा है। बाह्य पदार्थ कोई मुझे कष्ट नहीं देते, ये बाहरी पदार्थ कोई मुझपर जबरदस्ती नहीं करते कि तुम मुझे देखो, सूंघो, सुनो, खावो। यह ही जीव अपनी योग्यतासे कल्पनायें कर करके इन विषयोंपर टूट पड़ता है। इसमें अपराध किसी बाहरी पदार्थका नहीं है। जैसे कि लोग सोचते रहते हैं कि मुझको इसने दुःखी किया, मुझको इसने कष्टमें पटका। बालककी तरह। अगर २–१ वर्षके बालकको उसकी माता लिए जा रही है, दरवाजेसे निकलते समय जरासा कपाट उस बच्चेके सिरमें लग जाय तो वह रोने लगता है। तो वह मां उसका रोना बंद करानेके लिए क्या उपाय करती है कि उस कपाटमें दो एक तमाचा लगा देती है। वहां वह बच्चा यह सोचता कि इस कपाटने मुझे दुःखी किया तो मेरी मां ने उसे सजा दिया। तो ऐसी ही दशा इन अज्ञानी जीवोंकी है। वे कल्पनायें करते हैं कि इसने मुझे दुःखी किया इसको सजा देना चाहिए। इसने मुझे कष्टमें डाला तो मैं भी इसे दुःख दूंगा। अरे कष्टमें डालने वाला कोई दूसरा नहीं है। भीतर से कल्पनायें जगाते और कष्ट पाते।

http://sahjanandvarnishastra.org/

(१०६) **सकल जीवोंमें स्वरूपसमताकी दृष्टिका विलास**—सब जीवोंको समान समझें। सबमें परमात्मस्वरूपके दर्शन करें। मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? पशुपक्षी, कुत्ता बिल्ली, कीड़ा मकोड़ा आदि इनमें भी परमात्मस्वरूपका दर्शन करें। हैं तो सब समान पर कर्मोपाधिवश यह ऊपरी अन्तर आया है। आपकी वृत्ति सौम्य हो जायगी। मच्छर काटेंगे तो आप थप्पड़ न लगायेंगे। उसे प्रेमसे भगायेंगे, क्योंकि मच्छरका काटना सहा तो जाता नहीं, भगाना पड़ेगा और साथ ही उसके आत्माके प्रति विश्वास है कि है तो परमात्म-स्वरूप। कर्मोदय इस प्रकारका है। किसी बात पर अन्याय न कर सकेगा ज्ञानी पुरुष। मेरेको कष्ट देने वाला मेरा ही खोटा परिणमन है। बाहरी पदार्थ कोई मेरेको कष्ट नहीं पहुंचाता। अगर यह बुद्धि जगती है कि इसने कष्ट दिया, इसने सुख दिया तो वह अज्ञान है। राग स्वयं अपवित्र चीज है। राग स्वयं अंधकार है। रागमें की हुई चेष्टा बुद्धिमानी नहीं है। अगर किसी रागकी प्रशंसा भी की गई। जैसे दर्शनविशुद्धि भावनामें कल्याण भावना की प्रशंसाकी गई। सब जीवोंपर इतना अनुराग उमड़ा है कि सबके कल्याणकी भावना है सबके कल्याणकी भावना हुई है। तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है तो उस रागमें तीर्थंकर प्रकृतिके बँधनेका सामर्थ्य जो आया वह इस ही साम्यक्त्वके संपर्कके कारण आया। किसी बड़े आदमीके साथ रहने वाले चपरासीमें भी तो एक प्रभुता बनी रहती है। इस सम्यक्त्वके साथ रहने वाले रागमें इतनी प्रभुता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका आश्रव हो जाता है, पर वह प्योर याने सिर्फ रागका सामर्थ्य नहीं। किन्तु इस सम्यक्त्वके सहवासका सामर्थ्य है कि कल्याण भावनाके अनुरागसे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है।

(१०७) **स्वाधीन वर्तनामें विडम्बनाका अभाव**—सर्वत्र, मैं अपनेमें अपना काम करता हूं मैं अपनेमें अपनी परिणतियोंको भोगता हूं। मेरेको कहीं टोटा नहीं, मेरेको कहीं हानि नहीं, मेरा किसी भी स्थितिमें बिगाड़ नहीं। क्यों हठ हो बाहरी पदार्थका। कर्तव्य भले ही हो, जिस परिस्थितिमें हैं। मगर यह मानना कि ऐसा हुए बिना मेरा जीवन क्या? यह हठ न होना चाहिए। जो प्रकृतिको मंजूर है वह यहाँ होता रहे। जो मेरेको मंजूर है वह धन मेरे पास सदैव है। बिगाड़ क्या है? ऐसा अपनेमें अपनेको अकेला जो निरखे वह पुरुष बड़ा पवित्र आत्मा है। शुद्ध ज्ञानका प्रकाश हो वही स्थिति उत्तम है और यह हो सकता है शुद्धज्ञानकी दृष्टिसे ही, शुद्ध ज्ञानका संचेतन करनेसे ही। वहाँ बंध नहीं, वहाँ आपत्ति नहीं, ज्ञानप्रकाशमें कोई विडम्बना नहीं।

(१०८) **सत्सङ्गकी महिमा**—जब चरित्र सुनते हैं कि श्री नेमिकुमार सजी सजाई बारातमें से एक थोड़ा योग पाकर लौट गए, दीक्षित हो गए और यह राजुल भी वहाँ जाकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पहले तो थोड़ा अनुरागकी बात की, पर बादमें वह भी दीक्षित हुई, प्रसन्न हुई। मोही जीव कथा तो सुन लेते हैं, पर भावभासना नहीं बनती। शायद वे सोचते होंगे कि ऐसा हो कैसे सकता है? वह तो कथा है, सुन लेनेके लिये है, वह बात चित्तमें नहीं आ सकती। कैसा अपूर्व अलौकिक प्रेम नेमीका राजुलपर कि जिसकी मिसाल नहीं हो सकती, खुद दीक्षित होकर कल्याण तो किया ही और राजुल भी विरक्त होकर दीक्षित होकर अपना कल्याण कर गई यह नेमिके धर्मवात्सल्यका प्रभाव है। ऐसे वात्सल्यकी कोई मिसाल भी हो सकती है क्या? तो जिनको अपने ज्ञानस्वभावकी प्रीति है उनका सहवास उनका सत्संग करने वाला पुरुष भी संसारसे पार हो जाता है। ऐसी गोष्ठी, ऐसा रोजका प्रसंग, ऐसा यहाँका सत्संग यह तो एक अपूर्व घर है, अपूर्व कुटुम्ब है, जिसकी कोई मिसाल नहीं। लोकका माना हुआ कुटुम्ब तो पापमें लगानेकी प्रेरणा करता है। अगले भव और गतिको बिगाड़नेका हो प्रोग्राम बनाता है। उसे क्या कहेंगे? परिवार। सत्य परिवार है धर्मात्माजनोंकी गोष्ठी, धर्मात्माजनोंका मिलन। जहाँ सबका ही यह परिणाम हो कि मुझे कुछ न चाहिए। न विषय न कीर्ति, न नाम न यश। जो धर्मात्माजनोंको चाहिए सो मुझे। ज्ञान वैराग्यकी प्रीति इन्हें सो मुझे, इसीमें सब बढ़ें मैं भी बढ़ूँ। यहाँ कुछ न रहेगा। जो न रहेगा, उसका लगाव क्यों करूँ? ऐसा अन्तः आत्महितके जहाँ प्रोग्राम चलते हों, कुटुम्ब वह है। मित्र मण्डली है वह सच्ची जहाँ ज्ञानके संचेतनके लिए प्रेरणा मिलती हो। जहाँ ज्ञानका संचेतन नहीं वहाँ ही यह विकल्प है कि मैंने परको किया और परको भोगा। मैं अपने ज्ञानको ही भोगता हूं। कर्म आते हैं, उनका अनुभाग होता है, उनका फल आता है। अरे वह मेरे चेतने के बिना ही निकल जाय मेरे भोगमें मत आये, क्योंकि इसका लगाव इसका भोग बहुत कटुक परिणाम देता है। जिन्होंने सहज आनन्दका स्वरसमें अनुभव किया है उनको अस्थिर विषय क्या नीके लग सकते हैं? जिसने अपने ज्ञानप्रकाशको ज्ञानमें मिलाकर अथवा एक तन्मय होकर एक क्षेत्र बनाया उस पुरुषको ये इन्द्रिय विषय, मनके विषय ये कुछ मूल्य नहीं रखते। ऐसा यह मैं स्वयं ज्ञानानन्द स्वभावसे परिपूर्ण हूं।

(१०६) **प्रबल एकत्वदृष्टिमें अद्भुत अविचलता**—जिसके निज एकत्वकी जितनी दृष्टि प्रबल बनेगी, अधिक दृढ़ बनेगी उसको जरा जरा सी घटना जरा जरा सी हानि जरा जरासे गालीके शब्द ये विचलित न कर सकेंगे। असलमें यह बात है कि ज्ञानीको ज्ञान इतना प्रियतम बन गया उस पुरुषको कि बाहरी बातें, उपद्रव कितने ही आयें तो उन्हें भी सहता, परवाह नहीं करता पर ज्ञानको नहीं छोड़ता जैसे यहाँके मोही लोग जिन्हें धन प्रियतम हो गया, या जो भी प्रियतम बना उसे नहीं छोड़ता। चाहे कितने ही कष्ट सहें, ऐसे ही

Version 1

ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञानभावको नहीं छोड़ता, चाहे वह कितने ही कष्ट उठा ले, उपद्रव आ जाय पर इतना भी नहीं सोचता कि अगर यह ख्याल मुझे चोट रहा है तो इसे भगा दूं, फिर अच्छी तरह ध्यान करूं। बीचमें भी यह विकल्प करूं और भगाऊँ तो आगेकी क्या आशा है कि विकल्प न हों। यह ही उन उपसर्गोंके सहनेकी कुञ्जी है। जैसे कहते हैं कि गोदका लड़का छोड़कर पेटकी आशा करना। यह एक कहावत है। तो जो मेरे अनुभवमें आ रहा, ज्ञानस्वरूपमें ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिको तजकर क्या आशा करना कि मैं इस गीदड़ी को भगा दूं फिर बादमें आरामसे आत्मामें मग्न होऊंगा, उसकी क्या आशा करना ? उपसर्ग सहते।

(११०) **अन्तर्मग्न होनेका ज्ञानीका दृढ निर्णय**—ज्ञानीके एक ही निर्णय है कि ज्ञान को ही भोगना है दूसरा कोई प्रोग्राम नहीं है, क्योंकि उसको अपने आपमें अपने स्वरूपका दर्शन हुआ। और अलौकिक आनन्द आया है। जो स्वरूप, बस देखा ही जा सकता है, अनुभवा ही जा सकता है, पर शब्द द्वारा नहीं कहा जा सकता। जिसका दर्शन हुआ है, उसका आनन्द तो अनुभवा जा सकता, पर कहा नहीं जा सकता शब्द जितने हैं वे सब विशेषण हैं। विशेष्य कोई शब्द नहीं। व्यवहारमें भी तो जितने शब्द हैं वे सब विशेषण हैं। जैसे—चोकी—जिसके चार कोने हों, यह कोई नाम तो नहीं लिया गया। अभी तो विशेषण ही लगाया, लोटा, जो लोटता रहे, भींत, जिसमें ईंटें भिच गई उसका नाम है भींत। तो कौन सा शब्द ऐसा है कि जो असली नाम हो। नाम वाला कोई शब्द नहीं। सब विशेषण हैं। और कुछ गुंजाइस ही न थी तो किसी भी विशेषणको नामरूपमें रख दिया। मेरा कुछ नाम नहीं, मैं अपनेको कषायसहित कहूं तो गलत, कषायरहित कहूं तो गलत। कषायसहित स्वरूप थोड़े ही है। स्वरूपमें तो अविभागप्रतिच्छेद है। कषायरहितमें क्या जाना गया ? कषायसहितमें क्या जाना गया ? खुद तो नहीं जाना गया। खुद तो एक ज्ञायक भाव स्वरूप है, सो भी विवश होकर शब्दमें बोलना पड़ा। वह शब्द भी एक विशेषता बतला रहा है कि जाननहार। समस्त ख्यालात छोड़कर प्रसंग छोड़कर परमविश्रामसे कोई अपनेमें स्थिर हो तो सब बातें उसके अपने आप प्रकट हो जाती हैं।

(१११) **परिणामकी परख**—जैसे बड़े-बड़े जलाशयोंका पानी आतापसे, सूर्यकी किरणों से भाप बनकर अपने असली घरसे उड़कर बहुत ऊपर बड़े अन्तरसे कठोर रूपमें रहा करता है, उन्हें कहते हैं बादल। समुद्रमें ही था वह नम्र था, पर आतापके कारण वह पानी उड़ा, भाप बना और बहुत ऊपर कठोर रहने लगा। और गरज रहा बहुत बहुत। वही पानी अपनी कठोरता छोड़कर जब बरषता है तो बरषकर निम्नता प्रकृतिके कारण बह-बहकर उसी जलाशयमें इकट्ठा हो जाता है। क्या ढंग रहा ? अपने स्थानसे उड़ा, कठोर बना, फिर पिघला,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बरसा, नीचेकी ओर ढला और जहाँका तहाँ पहुंच गया। ऐसे ही इस ज्ञान जलाशयसे भव-तापके कारण आशा आदिक अग्निसंतापोंके कारण यहाँसे उपयोग उड़ा और किस किस ढंगमें बाहर गया, बाह्य पदार्थोंका सहारा लिया, कठोर बना। कहाँ तो यह स्वभावसे भोला, सरल, अविकार और कहाँ उपयोग क्रोधी, मानी, कपटी, लोभी आदि कितने ही विकल्पोंसे यह उप-योग कठोर बना गया। कठोर बनकर उड़ रहा है। बाहर ऊपर चारों तरफ उड़ ले, आखिर उड़नेके बाद जब समय आयगा तो यह उपयोग नम्र होकर फिर अपने स्थानकी ओर हो लेगा उन सब स्थानोंसे हटकर अपने आपके धाममें आवगा। निम्न बनकर, नम्र बनकर अपने आप की ओर अभिमुख होकर जब यह उड़ा हुआ उपयोग अपने मूल इस ज्ञान जलाशयमें मिल जायगा तब उसकी भटकना बंद हो गई समझिये और नाटक भी पूरा हो गया। तो इस सारे नाटकके बीच यह सोचना चाहिए कि हम किस जगहका पार्ट अदा कर रहे हैं। उड़ रहेका कर रहे, कठोर बननेका कर रहे या नम्र बननेका कर रहे, गरज रहेका कर रहे या नम्र बनने का कर रहे या निजधाममें मिलनेका कर रहे।

(११२) निजगुणपरिणतिके सिवाय अन्यपरिणति किये जानेकी अशक्यता—अपनी गुणक्रियाके सिवाय जीव और करता ही क्या है? सर्वत्र उसकी यह ही बान पड़ी हुई है। इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं भोगता। बाहर अणु मात्रसे भी मुझ उपयोगका कोई सम्बंध नहीं। यह तो इकतरफा बात चल रही है। जैसे कि लोग कहते हैं कि मान न मान, मैं तेरा महिमान। जगतके ये बाह्यपदार्थ मुझको कुछ भी नहीं मानते, मान ही नहीं सकते, दोष की भी बात नहीं। वस्तु का स्वरूप है ऐसा। कोई किसी दूसरेको कुछ ले दे नहीं सकता। जो कोई कुछ भी करता है सब अपने आपमें अपनी चेष्टा करते हैं। तो मेरेको कौन मानता है? कौन समझता है और मैं मान न मान मैं तेरा महिमान यह है सब संसारी जीवोंकी आदत। किसी भी परद्रव्यसे रंच भी सम्बन्ध नहीं। अनेक भव बिता डाले। जो कवायत आज कर रहे हैं, जो श्रम और व्यायाम इस जीवनमें कर रहे हैं वही श्रम और व्यायाम पहले भी अनेक भवोंमें किया। उस श्रमका फल क्या मिला? कुछ है क्या हाथ? तो जैसे इस भवमें पहले भवोंमें समागत चीजोंको सर्वस्व मान-कर उस अज्ञानमें रहकर जीवन बिताया वैसे ही आज आजके समागमोंमें रहकर, अज्ञानी बनकर जीवन बिताया जा रहा है।

(११३) निराकुल होनेका स्वाधीन सरल उपाय— "राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम?" सरल है उपाय, सच्चा है उपाय, स्वाधीन है उपाय। करना भी क्या है? सब कुछ तैयार है, परिपूर्ण है, निस्पन्न है। केवल एक भोगने अर्थात्

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृष्टि देने भरकी ही कमी है। इसके लिए बहुत साहस बनाना होगा। पहला साहस है लोभ का त्याग। वैभवमें घरमें, मकानमें, इनमें मोहका त्याग। इनसे निराला हूं मैं, मिल गया अटपट। उदयवश हो गया तो इसमें मेरी कला कुछ नहीं है वर्तमान भावसे यह सम्पदा नहीं आती योग संयोग है आ गयी। उसमें मेरा क्या? उसमें क्यों जकड़ा रहूं, क्यों उसमें महत्त्व बनाये रहूं? यह अंधकार है। अंधेरेमें भला नहीं। ज्ञानप्रकाशमें आवो।

(११४) **फसावसे हटकर निजधाममें पहुँचनेका उपायदर्शी आकस्मिक साधन**—कोई एक पुरुष किसी दूसरे गाँवसे अपने गाँवको जा रहा था, रास्तेमें शाम हो गई। और, अनेक रास्तायें फूटी हुई थीं। रास्ता भूल गया और जंगलमें जाकर फँस गया। रात्रिके ९-१० बज गए, परन्तु वह आगे बढ़ता गया इसलिए कि रास्ता मिल जायगा तो मैं जंगलसे निकल जाऊँगा, पर ज्यों ज्यों चलता गया त्यों त्यों जंगलमें उलझता गया। बीहड़ पहाड़ी जंगल था। किसी आदमीका वहाँ नाम नहीं। वह बड़ा घबड़ाया। थोड़ा धैर्य बनाकर सोचता है कि अब आगे मत बढ़ो, यहाँ तो जितना बढ़ते हैं उतना ही फंसते जा रहे। सो वह उसी जंगलमें एक जगह रुक गया, बैठ गया, लेकिन चिन्ता बनी हुई है। कहाँ फंस गया? यहाँसे निकल भी सकूँगा या नहीं? बस चिन्तातुर बैठा हुआ था। अचानक ही मेघमें बिजली चमकी और उससे थोड़ा क्षणिक उजाला हुआ कि उस उजालेमें कुछ दूर नीचेकी ओर सड़क दिख गई। बिजली खतम, प्रकाश खतम, वही अंधेरा, वही बीहड़ जंगल। वे ही सारी बातें, क्षणिक उजेलेमें जो सड़क दिख गई, यह मार्ग है, बस इतने भर ज्ञानसे अब उसमें चैन आयी। कुछ शान्ति है, धीरतासे बैठा है, प्रतीक्षा कर रहा है। आने दो छुटपटा सवेरा, यहाँ चलना है, सड़क है, उससे चलकर अपने गाँवमें पहुंच जायेंगे। ऐसी ही यात्रा मेरी हो रही, ऐसी ही यात्रा यहाँ मनुष्योंकी है। यह चलता जा रहा है, अनेक गलियाँ हैं, गलियोंमें भूल जाते हैं, अनेक गोरखधंधोंमें फंस जाते हैं। दुःखके बीहड़ जंगलमें फंस गए, और ऐसा फंसे कि निकलनेका रास्ता नहीं दिखता। ज्यों ज्यों बढ़ते हैं त्यों-त्यों और भी फंसते जाते हैं। बहुत फंसा बहुत घूमा, बड़ा बेचैन है। थकानके मारे वह बैठ गया। कभी यह मनुष्य थककर भी अच्छी बात कहने लगता है। मगर वह रोषमें कहता है। ऐसे ही सही, थक गया, बैठ गया क्षणभर के लिए उसने उस बड़ी आपत्तिके अवसरपर सबका ख्याल भुला दिया। सब बेकार है। जब जानकी नौबत आती है, प्राण जानेका समय आता है तो उद्बोध आता ही है। किसका ख्याल करना? यदि मर गए, किसी बाघ सिंहने खा लिया तो हम तो गए। किसके लिए मरना? सबका ख्याल छोड़ें, कुछ धर्मकी ओर चित्त दें, कुछ बाहरी श्रमसे मुख मोड़ें, कुछ विश्राम हो। इतनेमें क्षणभरको ही बाहरी ख्याल छोड़नेके प्रतापसे भीतरमें एक प्रकाश हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसी ज्ञानविद्युत चमकी क्षणभरको जिसमें स्पर्श तक न कर पाये, किन्तु तकसो लिया गया। समझमें आ गया कि यह है अपना असली धाम। यह है शान्तिका घर, विश्रामका घर। तो बड़े दुःखके बीच रहकर भी अब इस ज्ञानीको धैर्य आ जाता है। परवाह नहीं। जान तो गया, वह है मार्ग। जो निजमें तकेगा, उसपर चलेगा उसका सब झगड़ा शान्त हो जायगा। देख लिया वह रत्नत्रयमार्ग भीतर ही अपनेमें, उसपर चलेगा। वह मार्ग तो बड़ा साफ है, स्वच्छ है, पर कुछ दूर है। अणुव्रतकी पगडंडियोंसे चलकर उस स्वच्छ पथपर पहुंचनेका पात्र हो ही जायगा। उसे धैर्य है, रह रहा है गृहस्थीमें, पर चित्त शान्तिधाममें पड़ा हुआ है। ऐसा जिसने अपने विज्ञानघन आनन्दस्वरूप निज तत्त्वको साक्षात् किया, प्रत्यक्षभूत किया, ज्ञान द्वारा अनुभवमें लिया वही पुरुष अमीर है, वही पुरुष श्रेष्ठ है, वही पुरुष है, यह ही कल्याण है, बाकी सब गोरखधंधा है।

(११५) **आत्मस्वरूपपरिचयकी प्रयोगसाध्यता**—इस आत्मस्वरूपका परिचय तो प्रयोगसे ही मिलता है, शब्दोंसे नहीं, पंक्तियोंसे नहीं, अर्थसे नहीं। प्रयोगसे। जैसे मिश्रीके स्वादका सही परिचय खानेसे मिलता है, समझानेसे नहीं, बोलनेसे नहीं, ऐसे ही इस अविकार ज्ञानघन अंतस्तत्त्वके परिचयका स्वाद प्रयोगात्मक परिचयसे प्राप्त होता है। विकल्प तोड़ें, दिलको हल्का करें, चित्तको ढीला करें, विश्राममें लायें तो सहज ही ऐसी ज्ञान ज्योति उमड़ेगी कि उसका दर्शन होगा, उसका स्पर्श होगा। बस उसपर चलनेका काम है। गुप्त ही गुप्त कहीं भी एकान्तमें, घरमें किसी भी जगह धुन बनाकर इसका अनुभव करें, आस्वाद लें, बस यह ही शरण होगा। जगतमें कोई दूसरा शरण नहीं है। हमारे अनुभवी पुराण पुरुषोंने जिन्होने इस आतमतत्त्वका अध्ययन किया, अपने अनुभव हम सब पर करुणा करते हुए अपनी लेखनीसे लिख गए। हम बाँच लेते हैं पर प्रत्येक शब्दका यह शब्द क्यों दिया? उसका अध्ययन करें तो उसके भीतर मर्म छिपा तत्त्व है, विधि है उसे खोजा जा सकता है। यों तो कुछ लोग कहते हैं कि राम रावणके युद्धके समय बानर सेनाने समुद्रको लाँघा। सारा समुद्र लाँघ गए। कथायें हैं उनकी। दृष्टान्तके लिए मान लो, भले ही लांघ लिया हो लेकिन समुद्रमें क्या क्या रत्न छिपे हुए हैं, क्या क्या उसमें पड़ा है इसका परिचय क्या समुद्र लांघनेसे हो जायगा? यह परिचय तो समुद्रमें डुबकी लगानेसे होगा। भीतर ही भीतर खोजनेसे होगा। कि यहाँ कैसे कैसे रत्न पड़े है। ऐसे ही हम पन्ने उलट कर पढ़ते चले जायें और अर्थपर दृष्टि नहीं, संगत शब्दकी चर्चा नहीं, हम मर्म नहीं समझ सकते कि जो अनुभव आचार्य संतोंने किया, बात कही,

(११६) **अज्ञानमें विकारका आमंत्रण**—ज्ञानघन यह आत्मा किस प्रकार परवश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो रहा, बँधा हुआ सा, अधीर बन रहा, दुःखी हो रहा। वह कोई वातावरण ही तो है। भले ही प्रत्येक पदार्थ की निज निजमें ही परिणति होती है। पर विकारके लिए यदि स्वतंत्र है तो विकार फिर मिटनेका अवसर कहाँ? विकार होना पड़ रहा है, विकार करना पड़ रहा है। जिसको अविकार स्वभावके देखनेकी रुचि है वह स्पष्ट जानता है पूर्वबद्ध कर्म जब भूत प्रेतसे भी भयानक स्थितिमें आते हैं याने उनके अनुभागका जब उदय होता है तो वह अपने आपमें विरूप हो जाता है, क्षुब्ध हो जाता है। उनमें विस्फोट होता है। वह सब कर्म की परिणति है। पर हो तो रहा यह एक क्षेत्रावगाह और वह सारा मौज, सारा रंग इस उपयोगमें बसा। यह उपयोग गंदा हुआ और फिर इतनी मूढ़ता कि उस गंदेपनमें आये उपयोगको अपना भी लिया। यह सब क्या है? यदि किसी दुष्टको अपनेमें थोड़ी जगह देवें या महिमानका बड़ा आदर करें। जिस महिमानकी यह इच्छा है कि मैं इस घरमें महीनों रहूं तो वह तो रहेगा। उसका आदर किया ना? तुमने महिमानको अपना लिया। प्रभावित हो गए। यह नहीं जाना कि यह तो महिमान है। महिमा न, जिसकी कोई महिमा नहीं उसी को तो महिमान कहते हैं। जो रंग आया, जो कषाय आयी वैसा बुद्धिमें रंग गया। भयमें भय किया। जिस प्रकृतिका रंग हुआ उसकी झाँकी हुई, इस उपयोगने अपनाया और अपने आप पराधीन बना। जगतमें रुल रहा।

(११७) **रहे सहे जीवनका सदुपयोग कर लेनेमें विवेक**—भैया! जरा चिन्तन कीजिये कि जगतमें लोग जब चाहे मर जाते हैं। कोई गर्भमें, कोई बाहर आते ही मर जाता, कोई शिशु, बालक, कोई जवान, कोई वृद्ध, यों जब चाहे जो चाहे मर जाता है। अभी तक जीवित हैं तो समझो कि मुफ्त ही जीवित हैं। अभी तक जीवित हैं यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। अन्यकी भाँति हमारा भी जीवन खत्म हो गया होता तो हमारी क्या हालत होती? न जाने किस पर्यायमें होते? न जाने क्या स्थिति होती? आज तक जो जीवित हैं तो समझो कि यह जीवन मुफ्त ही मिला है। अभी तक हम आप जिंदा हैं इसमें आश्चर्य है। मर जानेमें क्या आश्चर्य? जैसे जलका बुदबुदा, उसके कुछ समय तक टिक जानेमें आश्चर्य है, उसके फूटनेमें क्या आश्चर्य? ऐसे ही हम आपके जीवित रहनेमें आश्चर्य है। मरणमें क्या आश्चर्य? तो इस दुर्लभ जीवनको पाकर यह समझें कि हमारा यह जीवन आत्महित करनेके लिए मिला है, अन्य फिजूलकी बातोंके लिए नहीं। तो जो यह रहा सहा जीवन है इस जीवनका हम सदुपयोग करें। सदुपयोग यही है कि ऐसा पौरुष करें कि इन परतत्त्वोंसे हटकर निज तत्त्व के ज्ञानमें, चिन्तनमें, मननमें देखते ही रहें आत्माको। जिसे बैठना कहते ऐसा भीतर आराम से बैठना ही रहे, इस ज्ञान द्वारा ज्ञानधाममें ज्ञानको बिठायें। भीतरका यह पौरुष होना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चाहिए, जीवनकी सफलता इस ही अन्तर्यत्नमें है।

(११८) **मंगलमय होनेका तंत्र**—यह मंगलतंत्र मंगलरूप होनेका उपाय है। मंगल अर्थात् मं गल याने पापको नष्ट करने वाला। मंगल याने मंग ल, मंग मायने आनन्द, आनन्द को लाने वाला। ऐसा जो भाव है उसे कहते हैं मंगल, अर्थात् जहाँ दोष एक भी न रहे और गुण सम्पूर्ण प्रकट हो ऐसी अवस्थाको कहते हैं मगल। यह मंगलतंत्र मंगलमय होनेका तत्र है अर्थात् उपाय है। मंगलस्वरूप चूंकि केवल ज्ञानमय है, अतः सर्वप्रथम अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करना चाहिए। इस ज्ञानमात्र तत्त्वमें परका प्रवेश नहीं है, जैसे कि आकाशके स्वरूप में किसी परका प्रवेश नहीं। जब प्रवेश नहीं तो भार ही किसका? जब भार नहीं तब विह्वलता ही क्यों? तो ज्ञानमात्र सोचते ही विह्वलतायें दूर हो जाती हैं। इस मुझ मंगलमय स्वरूपमें सर्वत्र ज्ञानघन बसा हुआ है। यह मैं अपने आपमे ज्ञानसे ऐसा परिपूर्ण हूं, परिपूर्ण था, पूर्ण हूं, पूर्ण रहूंगा तो यहाँ कुछ अधूरापन है ही नहीं, फिर मैं क्यों कुछ सोचूं? मैं तो कृतकृत्य हूं। यह मैं मंगलमय अंतस्तत्त्व अपने आप स्वतः सिद्ध सहज ही आनन्दस्वरूप हूं। जब मैं स्वतः आनन्दस्वरूप हूं तो मेरेमें कष्टका कुछ अवकाश ही नहीं है जहाँ कष्ट नहीं और आनन्द ही आनन्द सहज आनन्द बस रहा हो वहाँ स्वय अनुपम तृप्ति होती है। तो यह मैं मंगलमय अन्तस्तत्त्व स्वयं तृप्त हूं। ऐसे शुद्ध मगलस्वरूप कारणसमयसारकी जो आराधना है वह ही मंगल हानेका उपाय है। इस उपायमें अनादि अनन्त अहेतुक शाश्वत ज्ञानमूर्ति अंतस्तत्त्वकी आराधना की है। इस आराधनाके प्रसादसे ही मंगलमय अवस्था होती है।

॥ मंगलतंत्र प्रवचन समाप्त ॥

सात्विक रहन-सहन

आत्माकी सात्त्विकता—हम सब जीव शांति चाहते हैं, और जितने भी प्रयत्न करते हैं वे सब शान्ति पानेके लिए किया करते हैं, किन्तु शान्ति है कहाँ? जहाँ यह परिस्थिति बने कि जो जैसा है उस वैसा रहने दें। जो स्वयं जैसा है उसे वैसा जानें, देखें। इस वृत्तिका नाम है सात्त्विक वृत्ति। आत्माका स्वभाव केवल एक प्रतिभास है, ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है। इसका विशुद्ध स्वरूप और परिणमन केवल एक प्रतिभास है। सात्त्विक स्वरूप और परिण-

मन केवल एक प्रतिभास है। सात्त्विक स्वरूप यह है और इस वृत्तिसे चलना सो आत्माका सात्त्विक रहन-सहन है।

आत्मविराधक शृंगार— सात्त्विक स्वभाव वाले इस आत्मापर जब शृंगार लाद दिया जाता है तब यह आत्मा बोझल हो जाता है और इसे जगतमें रुलकर दुःखी होना पड़ता है। इस आत्मापर क्या शृंगार लादा जाता है? शृंगार नाम है अन्य चीज लादने का। स्वयंमें से स्वयं उत्पन्न हुई सुन्दरताको लोग शृंगार नहीं कहा करते। वह तो सुन्दरता है, शृंगार बाहरी चीजें लादनेको कहा करते हैं। इस आत्मामें शरीर कर्म रागद्वेष विचार विकल्प ये सब शृंगार आत्माको पहना दिये जाते हैं। तो इस आत्माकी क्या विडम्बना होती है, इसके परखने वाले ज्ञानी साधु पुरुष हुआ करते हैं और जो इसी शृंगारमें डूबे हुए हैं वे संसारी मोही प्राणी हैं, उनमें ऐसे शृङ्गार वाले बुरे नहीं जंचते। और ऐसे शृंगारीजन ऐसे शृङ्गारके रुचिक लोगोंमें अपना शृङ्गार बनाया करते हैं।

सात्त्विक वृत्तिका प्रकाश— जैसे अध्यात्म स्थितिमें सात्त्विक रहन-सहन और शृंगार वेश-भूषा फैशनका जो एक अन्तर है ऐसा ही अन्तर व्यवहारमें सात्त्विक रहन-सहन और शृंगार शौक फैशनमें वैसा ही अन्तर है, जैसे है वैसे ही अपनेको रखें। हाँ गृहस्थावस्थामें व्यवहारिकता भी रहती है विशेष, अतः साधारण कपड़े पहिन लें, स्वच्छ साफ कपड़े पहिन लें. बस यही तो है सात्त्विक रहन। जिस जगह भी आडम्बर, सजावट न रहे, वहाँ राग प्रदर्शक बातें न रहें यही है सात्त्विक निवास। कोई कुछ कहे उन बातोंमें क्षोभ न लाना और उनकी उपेक्षा करना, शान्त भावसे रहना, यही है सात्त्विक सहन। सात्त्विक रहन, सात्त्विक निवास, सात्त्विक सहन, सात्त्विक आहार, यही सब है सात्त्विक वृत्ति।

सात्त्विकतामें आराम—- जैसा रोज-रोज खाया जा सके वैसा ही खाना यही है सात्त्विक आहार। अहिंसापूर्ण भोजन हो, रसीला, स्वादिष्ट चटपटा न हो, मसालेकी किसी साग वगैरहमें आवश्यकता क्या, थोड़ा छौंकते समय कुछ जरूरतसी पडती है, उसके बाद जितना मसालेका संचय होगा वह फिर मसालेका साग बन जायगा। जैसे परवल है, उसमें खूब मसाले डालकर बनाया तो वह साग परवलोंका न रहेगा, वह मसालेका साग बन जायगा। ये सब असात्त्विक बातें हैं। सीदे-साधे सरल ढंगसे रहना चाहिए। सात्त्विक रहन-सहन भोजनमें ऊब न होकर वास्तविक प्रसन्नता रहती है।

सात्त्विक आहारमें निर्बाध निर्वाह—एक बार ईरानके बादशाहको भारतके बादशाह ने निमंत्रण दिया, तो आप जानते हैं कि जितनी तरहके व्यञ्जन बनाना हिन्दुस्तान जानता है हमारे ख्यालसे उतनी तरहके पकवान व्यञ्जन बनाना किसी देश वाले नहीं जानते होंगे।

http://www.jainkosh.org

ईरानके बादशाहको खूब नाना व्यञ्जन खिलाये। बादशाह खाता जाय और कहता जाय जाफ्ते ईरान, भोजन तो ईरानका है। भारतवासी बादशाह यह सोचता है कि भोजन तो हमारे देशका किया है और प्रशंसा ईरानके भोजनकी करता है। अब कुछ दिन बाद ईरानके बादशाहने भारतके बादशाहको बुलाया तो वहाँके भोजनमें क्या, वही सीधी रोटी साग। तो परेशान होकर सोचता है कि यह तो ईरानके भोजनकी बड़ी प्रशंसा करता था। यह तो कुछ भी नहीं है, तो बादशाहसे पूछा कि तुम तो ईरानके भोजनकी बड़ी प्रशंसा करते थे, क्या यही ईरानका भोजन है ? तो वह बोला—हाँ साहब यही ईरानका भोजन।…बढ़िया किस तरह ? आप यहाँ वर्षों तक बने रहें तो हमारी कभी यह इच्छा न होगी कि आप यहाँसे जायें, बहुत दिन हो गए। सादा भोजन है, आप खूब खायें, और तुम्हारे देशमें कोई ६ महीने भी रह जाय और वैसा ही भोजन खिलाते रहें तो कुछ दिन बाद आपके मनमें फर्क आ जायगा। यह कब तक रहेगा यहाँ ? यह है सात्विक आहार।

सात्त्विक वृत्तिसे आनन्दपात्रता—सात्त्विक वृत्ति व्यवहारमें इस जीवको ऐसा पात्र बना देती है कि यह आध्यात्मिक क्षेत्रमें अपनी सात्त्विकतासे प्रीति करना चाहे तो कर सकता है। देखो जितने भी महापुरुष हुए हैं वे कितने सात्त्विक रहन-सहनके थे। उनकी पोशाक, उनका रहन-सहन देख लो। भारतमें आपके गाँधी जी हुए, और त्याग क्षेत्रमें जो त्यागी सन्त जन प्रसिद्ध हुए हैं उनकी सात्त्विकता देख लो, जिसने बड़े वर्णी जी महाराजका दर्शन किया होगा वे खूब पहिचानते होंगे, उनके हृदयमें सात्त्विकता, ऊपर सात्त्विकता, बोलीमें सात्त्विकता थी और ऊँचे जैसे-जैसे लोग बढ़ जाते हैं सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। मुनि अवस्था और किसका नाम है ? भीतर सात्त्विकता, ऊपर सात्त्विकता पूर्ण रूपसे हो, उसीका नाम मुनि है। कोई शृंगार नहीं, सज-धज नहीं, बनावट नहीं, दिखावट नहीं, जैसा चाहे तैसा रह गया इसीके मायने हैं साधु। तो अब दृष्टि दो, सात्त्विक रहन-सहनसे रहा जाय तो वहाँ शांतिका अवसर मिलेगा।

किसका शृंगार—भला देखो तो सही, यह शरीर क्या है ? चमड़ेकी पर्तोंसे ढका हुआ हाड़-माँस मज्जा है। जैसे कभी किसी अच्छे पुरुषको आप घर बुलायें और घरमें आपके यहाँ कुछ रद्दी-फट्टी चीजें अटपट पड़ी हैं तो आप उसपर कोई रङ्गीन पर्दा वगैरह डाल देते हैं ताकि वह चीज ऊपरसे बढ़िया चिकनी चमकती हुई मालूम पड़े। और अगर कोई उसे सुहावनी देखकर उसका दर्शन करने लगे तो ऐसे ही समझिये कि इस आत्मा अतिथिको रिझानेके लिए बस देह घरकी ऐसी सजावट बनाते हैं। हाड़, मांस, मज्जा, खून, पीप इत्यादि सभी पड़े हुए हैं उस घरमें और उनके ऊपर सुहावना चिकना एक यह पर्दा पड़ा हुआ है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चमड़ेकी पर्तोंका। यह अतिथि ज्ञाता कभी कौतूहलसे इस ज्ञानरूपी हाथसे इस चमड़ेकी पर्तको हटाकर भीतर निगाह करे तो सब पता पड़ जायगा। ऐसे ही इस शरीरको सजानेका परिणाम रखें कोई तो समझो कि जैनधर्मसे कितना विपरीत जा रहे है अर्थात् धर्ममें लगनेका वहाँ अवसर कहाँ है ? शीशेमें बार बार मुख देखा, खूब सजावट किया, पाउडर लगाया, लिपिस्टक लगाया अनेक प्रकारके गहनोंसे इस शरीरको सजाया, कानमें ततैया, नाकमें मक्खी, मस्तक पर मकड़ी, ये सारे गहने शरीरमें खूब लाद लिये तो यह बताओ कि इसमें कौन-सा विवेकका काम किया ? अरे इन शौक श्रृङ्गारोंसे हटें और अपने कर्तव्यकी बात सोचें।

श्रृंगारसे हानियां— अपनेमें आत्मीयताका नाता रक्खें, मैं आत्मा हूं, मुझे सुखी होना है। यह ससार मायारूप है, क्षणभंगुर है, कितने दिनोंका है। अपने आपको अपने आपके हितकी बातोंमें लगायें, और बाहरी बातोंकी उपेक्षा करें। देखिये इस श्रृंगारसे कितनी हानियाँ हैं, मिथ्यात्वका पोषण है। इस शरीरको आत्मा मानना इसीका नाम मिथ्यात्व है ना, और शरीरपर इतनी ज्यादा दृष्टि देना साज श्रृंगारकी, तो यह मिथ्यात्वका पोषण है कि नहीं ? ठीक है, सभ्यताके नाते थोड़ा हो गया, और सुन्दरता उस ही सात्त्विक वृत्तिमें आती है। जैसे मान लो मुँहपर पाउडर लगानेसे एक श्रृंगार बनता है तो थोड़ा क्यों लगाते, ज्यादा जो लगा लो ताकि ज्यादा सुन्दरता बढ़ जाय। अरे देखने वालोंको अगर यह ख्याल आ जाय कि पाउडर पुता है तो उतनेसे ही उनके दिलसे सुन्दरता उतर गयी।

सात्त्विकतामें लाभ—भैया ! जो बात सात्त्विकतामें है, वह व्यवहारमें लाभदायक है और अध्यात्मक्षेत्रमें भी लाभदायक है। दिखावट, सजावट, बनावटसे कुछ लाभ नहीं है। जैसे व्यवहारमें सजावटसे दूर रहना एक लक्ष्यमें होना चाहिए ऐसे ही अध्यात्मक्षेत्रमें भी सजावटसे दूर रहना एक लक्ष्यमें होना चाहिए। जैसे गहनोंसे अपने शरीरको कोई लादे तो इसीका नाम सजावट है ना, इसी तरह इन परभावोंकी रागद्वेष विषय कषायोंको अपने उपयोगमें ग्रहण करके आत्मामें सजाना लगाना इस रूपमें अपनेको मानना यह आत्माकी बनावट सजावट की जा रही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com